विजया (दत्ता)

लेखक
शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय
अनुवादक
हंसकुमार तिवारी

Collect more e-books

A lot collection of Hindi e-books

Please click the link below-

www.ebookspdf.in

विजया (दत्ता)

लेखक

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक

हसकुमार तिवारी

प्रकाशन प्रभात प्रकाशन, २०५, चावडी बाजार, दिल्ली–११०००६
मुद्रक राजीव प्रिंटस, शीतला गली, आगरा–३
सर्वाधिकार सुरक्षित
संस्करण १६७५
मूल्य बारह रुपये

VIJAYA (DATTA)
novel by Sharat Chandra Chattopadhyay
Rs 12 00

उन दिनों हुगली ब्रांच स्कूल हेडमास्टर साहब जिन तीन लडको को अपने स्कूल का रत्न बताया करते थे, वे तीनो तीन अलग-अलग गाँव से रोज कोस भर पैदल चल कर पढने आया करते थे। अजीब मुहब्बत थी उनमे। कभी ऐसा नही होता कि रास्ते में उस बरगद के नीचे इकट्ठे हुए बिना वे स्कूल में कदम रक्खें। तीनों का घर हुगली के पश्चिम पडता था। जगदीश सरस्वती का पुल पार करके दिघडा गाँव से आता था और वनमाली तथा रासबिहारी आते थे अगल-बगल की दो बस्तियों से—कृष्णपुर और राधापुर। जगदीश उन सबों मे जैसा मेधावी था, उसकी हालत भी वैसी ही उन सबों से बुरी थी। पिता पुरोहित थे। यजमानो करके, ब्याह-जनेऊ कराके गुजारा चलाते थे। वनमाली सपन्न घर का था। उसके पिता को लोग कृष्णपुर का जमीदार कहा करते थे। रासबिहारी की हालत भी अच्छी खासी थी। जगह जमीन, खेती-बारी, बाग-तालाब, गाँव घर मे जो रहने से मजे मे गुजर-बसर चल सकता हो, सब कुछ होने के बावजूद ये लडके शहर मे किराए का मकान लेकर क्या आँधी और क्या पानी, सर्दी-गर्मी झेलकर रोज जो घर से इतनी दूर स्कूल आया-जाया करते थे, इसकी वजह यह थी कि तब वे माता पिता बच्चो की इस तकलीफ को तकलीफ ही नहीं गिनते थे, बल्कि यह सोचते थे कि इतना-सा कष्ट न उठाए तो सरस्वती की कृपा ही नही होने की। खैर कारण चाहे जो हो, उन तीनो लडको ने इन्ट्रेंस इसी तरह से पास किया था। बरगद के नीचे बैठ कर, उस पेड को गवाह रखकर तीनो दोस्त रोज यही प्रतिज्ञा करते थे कि जिंदगी मे वे कभी अलग न होंगे, ब्याह नही करेंगे और वकील बनकर तीनों एक मकान में साथ-साथ रहेंगे, रुपए कमा कर एक सन्दूक मे जमा करेंगे और उन रुपयो से देश-सेवा करेंगे।

यह तो हुई बचपन की कल्पना। लेकिन जो कल्पना नहीं, सत्य है, अन्त तक उनका रूप क्या हुआ, संक्षेप में वही बताढूँ। मिताई की पहली गाँठ तो बी ए कक्षा में ढीली पड़ गई। उन दिनों कलकत्ते में केशवचन्द्र सेन का बड़ा प्रचंड प्रताप था। भाषण का जबदस्त जोर। देहात के ये लड़के उस जोर को हठात सम्भाल न सके बह गए। वह तो गए, लेकिन वनमाली और रासबिहारी जिस तरह खुले आम दीक्षा लेकर ब्राह्मसमाजी बन गए, जगदीश वैसा न बन सका, आगा-पीछा करने लगा। मेधावी वह जरूर सबसे ज्यादा था, लेकिन था बड़ा कमजोर दिल का। फिर उसके पंडित पिता जीवित ही थे। बाकी दोनों के यह बला न थी। कुछ ही पहले पिता के परलोकवासी हो जाने से वनमाली कृष्णपुर का जमींदार और रासबिहारी अपने गाँव की सारी जगह-जायदाद का एकछत्र सम्राट बन बैठा था। इसलिए कुछ ही दिनों में दोनों दोस्त ब्राह्म-परिवार से विदुषी भार्या लेकर अपने-अपने घर लौट आए। लेकिन बेचारे गरीब जगदीश को यह सुविधा नसीब न हुई। उसे कानून पास करना पड़ा और एक गृहस्थ ब्राह्मण की ग्यारह साल की लड़की से विवाह करके रोजी-रोटी के लिए इलाहाबाद चला जाना पड़ा। लेकिन जो रह गये, उन्हें जो काम कलकत्ते में बड़ा सहज लगा था गाँव में वही काम। बड़ा कठिन लगने लगा। नई बहू ससुराल में घूँघट नहीं काढ़ती, जूता-मोजा पहन मजे से सड़कों पर घूमती है—तमाशा देखने के लिए आस-पास के गाँवों से भीड़ जुटने लगी और सारे गाँव में एक ऐसी भद्दी हलचल पड़ गई कि निरी लाचारी न हो तो कोई बीवी के साथ वहाँ टिक नहीं सकता। वनमाली को चारा था, लिहाजा वह गाँव छोड़कर कलकत्ते जा बसा। महज जमींदारी पर निर्भर न करके कारबार शुरू कर दिया। लेकिन रासबिहारी की आय थोड़ी थी। सो एक सूप अपनी पीठ पर और एक बीबी की पीठ पर बाँध कर किसी तरह अज्ञात होकर गाँव में ही रह गया। इस तरह तीनों दोस्तों में से एक इलाहाबाद एक राधापुर और एक के कलकत्ता बस जाने से कभी ब्याह न करने, एक मकान में रहने और एक सन्दूक में रुपये जमा करके देश-सेवा करने की प्रतिज्ञा फिलहाल स्थगित रही। और जो बरगद इसके साक्षी थे, बिना किसी शिकवा शिकायत के चुपचाप हँसते रहे। इस तरह काफी दिन निकल गये। तीनों दोस्तों में

शायद ही कभी भेंट-मुलाकात होती, पर छुटपन का प्रेम एक बारगी गायब नहीं हुआ। जगदीश के लड़का हुआ, तो यह शुभ-समाचार देते हुए उसने इलाहाबाद से वनमाली को लिखा, तुम्हें लड़की होगी, तो उसे अपनी पतोहू बनाकर उस गलती का प्रायश्चित करूंगा, जो कि बचपन में की है। तुम्हारी ही कृपा से वकील होकर मैं सुखी हूं, इसे मैं एक दिन को भी नहीं भूला हूं।

उत्तर में वनमाली ने लिखा है। तुम्हारे बच्चे के दीर्घ जीवन की कामना। लेकिन मुझे बच्चो होने की कोई आशा ही नहीं। भगवान की दया से अगर कभी हुई, तो तुम्हें दूंगा। चिट्ठी लिखकर मन ही मन हँसे। क्योंकि कोई दो साल पहले जब दूसरे दोस्त रामबिहारी के लड़का हुआ, तो उसने भी ठीक यही लिखा था। वाणिज्य की कृपा से इस समय वे काफी बड़े आदमी हो गये थे। हर कोई उनकी लड़की को अपने घर ले जाना चाहता था।

दो चार महीने की नहीं पच्चीस साल की कहानी कह रहा हूं। वनमाली बूढ़े हुए। कई वर्षों तक लगातार बीमार रहते रहते अब बिल्कुल खाट पर पड़ गए। उन्हें ऐसा लगने लगा, अब शायद चंगा नहीं होने के। वे सदा से भगवत् परायण और धर्मभीरु रहे। मरने से उन्हें डर नहीं था। सिर्फ यही सोचकर जी में कुछ दुखी थे कि अपनी इकलौती बेटी विजया का ब्याह कर जाने का मौका न मिल सका। एक दिन तीसरे पहर अचानक विजया का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा था, बिटिया, मुझे लड़का नहीं है, इसका जरा भी गम नहीं। तू ही मेरी सब है, अभी तेरी उम्र पूरी अठारह की भी नहीं हुई, फिर भी तनिक भय नहीं। तेरे माँ नहीं, भाई नहीं, कोई चाचा तक नहीं। फिर भी मुझे पूरा भरोसा है, मेरा सब कुछ बरकरार रहेगा। मगर सिर्फ एक अनुरोध

है बिटिया, जगदीश चाहे जो करे और चाहे जो हो, वह मेरा छुटपन का साथी है। कर्ज की बाबत उसका घर-द्वार कभी बिकवा मत देना। उसके एक लड़का है, आँखों तो उसे देखा नहीं कभी, लेकिन सुना है, बड़ा भला है वह। पिता की गलती से उसे बेसहारा न कर देना बिटिया, यही मेरा अंतिम अनुरोध है।

आँसू रुँधे स्वर से विजया ने कहा था, आपका आदेश मैं कभी नहीं उठाऊँगी पिता जी। जगदीश बाबू जब तक जिन्दा हैं, मैं आपके समान ही उनकी इज्जत करूँगी। लेकिन उनके गुजर जाने के बाद उतनी जायदाद नाहक उनके बेटे को क्यों छोड़ दी जाय। उनको आपने भी कभी नहीं देखा, मैंने भी नहीं। और सच ही अगर उन्होंने पढ़ा लिखा है, तो मजे मे अपने पिता का कर्ज चुका सकते हैं।

बेटी की ओर नजर उठाकर वनमाली ने कहा था, कर्ज कुछ मामूली तो है नहीं बेटी। लड़का ठहरा, न चुका पाये तो?

विजया बोली थी—जो बाप का कर्ज न चुका पाये, वह कपूत है पिता जी। ऐसे को प्रश्रय देना उचित नहीं।

अपनी सुशिक्षिता और तेजस्वनी लड़की को वनमाली पहचानते थे। लिहाजा उन्होंने और ज्यादा दबाव नहीं डाला सिर्फ एक लम्बा निश्वास फेंकते हुए बोले, सभी काम-काज में ईश्वर का ध्यान रखते हुए जो कर्त्तव्य समझो, वही करना बिटिया। विशेष कोई आग्रह करके तुम्हें मैं बंधन में डालकर नहीं जाना चाहता। यह कह कर वे जरा देर चुप रहे और फिर एक लम्बी उसास लेकर बोले, एक बात बताऊँ बेटी, यह जगदीश जब सही मानों में एक आदमी था, तब तेरे पैदा होने के पहले ही उसने अपने इस लड़के के लिए तुम्हें मांग लिया था और मैंने भी उसे वचन दे दिया था—यह कहकर वे उत्सुक आँखों उसे देखते रह गये थे।

इस बच्ची ने छुटपन में ही अपनी माँ को गवाँ दिया था, इसलिए इसके पिता और माता, दोनों का स्थान उन्होंने ही पूरा किया था। सो पिता के पास माँ की ढिठाई करने में भी वह कभी नहीं हिचकी। उसने इस पर कहा था, आपने जुबानी कहा भर था बाबूजी, मन से उन्हें वचन नहीं दिया।

ऐसा कैसे कहती हो बेटी?

मन से वचन दिया होता तो उन्हे एक बार आँखो देखना भी नहीं चाहते। वनमाली ने कहा था, रासबिहारी से जब पता चला कि लडका क्या तो माँ जैसा ही कमजोर है, यहा तक कि डाक्टर उसके दीर्घ जीवन की आशा ही नही करते, तो पास होने के बावजूद उसे बुलवा कर मैंने देखना न चाहा। यहीं कलकत्ते म कही रहकर वह उस समय बी० ए० पढ रहा था। फिर अपनी बीमारी मे ही ऐसा उलझा कि ख्याल न रहा। मगर अब लग रहा है, यही अपना सबसे बडा नुकसान हुआ। फिर भी तुझे मैं सच कह रहा हू, उस समय मैंने तहेदिल से ही जगदीश को बचन दिया था। थोडी देर थम गये। फिर बोले—जगदीश को आज सभी जानते हैं कि वह एक निकम्मा जुआडी है, शराबी है। लेकिन कभी यही जगदीश हम सभी लडकों से बेहतर था। विद्या-बुद्धि की नही कहता बिटिया, वह बहुतो के होती है, लेकिन प्राणो से ऐसा प्यार करते मैंने किसी को नही देखा और यह प्यार ही उसका काल बन बैठा। उसके बहुत से दोष मैं जानता हू, लेकिन जभी यह ख्याल हो आता है कि स्त्री के मर जाने से वह पागल हो गया है, तो मेरी मा की बात का स्मरण करके मन ही मन उसे श्रद्धा किये बिना रहा नही जाता। उसकी स्त्री सती नारी थी। मरते समय नरेन को पास बुला कर उन्होंने इतना ही कहा था, बेटा, मैं केवल यही आशीर्वाद दिए जा रही हू, ईश्वर पर जिसमे तुम्हें अटल विश्वास रहे। सुना ह, माँ का यह आशीर्वाद विफल नही गया। इसी उम्र म उसन मा की तरह भगवान को प्यार करना सीखा है। और जो यह कर पाया, उसके लिए ससार म बाकी क्या रहा बिटिया।

विजया ने पूछा था, ससार मे यही क्या सबसे बडा कर पाना है पिता जी ?

मरणो मुख बूढे की आँखें गीली हो आई थी। यकायक हाथ फला कर बेटी को छाती से लगाते हुए कहा था, यह सबसे बडा कर पाना है बेटी। ससार मे, ससार के बाहर—विश्व ब्रह्माड म इतना बडा कर पाना और दूसरा नही विजया। तुम से खुद यह बने न बन, लेकिन जो ऐसा कर सकता है, उसके चरणो मे सिर टेक सको, मरते समय तुम्हे यही आशीर्वाद कर जाता हू।

पिता की छाती पर औंधी पडकर विजया को उस दिन ऐसा लगा था,

कोई मानों बड़ी मीठी और चमकती निगाहों से पिता के 'कलेजे' के भीतर से उसके गहरे अन्तस्तल तक को देख रहा है। इस अनोखी और अचरज की अनुभूति ने कुछ क्षण के लिए उसे आच्छन्न कर दिया था। वनमाली बोले थे—'उस लड़के का नाम नरेन है, उसके पिता से पता चला, उसने डाक्टरी पास की है—लेकिन डाक्टरी करता नहीं है। वह इस समय देश में होता, तो बुलवा कर उसे एक नजर देख लेता।

विजया ने पूछा था, तो अभी वे कहाँ हैं?

वनमाली ने कहा था, अपने मामा के पास—वर्मा में। अब जगदीश में यह क्षमता तो रही नहीं कि सुलझा कर सारा कुछ कह सके, लेकिन उसकी बिखरी निखरी बातों से लगता है, लड़के ने अपनी माँ के सारे ही सद्गुण पाए हैं। ईश्वर करे, जहाँ, जैसे भी हो वह, जीवित रहे।

साँझ हो गई थी। नौकर बत्ती लेकर आया। उसने विलास बाबू के आने की खबर दी। इस पर वनमाली बोले—तू नीचे जा बिटिया, मैं जरा आराम करूँ।

विजया ने पिता के सिरहाने के तकिये को सम्भाल दिया, ऊनी चादर को पाँव पर ठीक से खींच दिया, बत्ती को आँख की ओट में रख कर नीचे गई तो पिता के जीर्ण कलेजे को चीर कर एक दीर्घ निश्वास निकल पड़ा था। विलास के आने की सुन उस दिन बेटी के चेहरे पर जो आरक्त आभास झलक पड़ा था, बूढ़े को उसने दुखाया ही था।

विलासविहारी रासबिहारी का बेटा था। कलकत्ते में ही वह बड़े दिनों से एफ ए फिर बी ए पढ़ रहा था। समाज छोड़ने के बाद से वनमाली गाँव कम ही जाया करते थे। कारबार में खासी तरक्की होने से गाँव की जमींदारी को भी उन्होंने काफी बढ़ाया था, लेकिन उन सबकी देख रेख का भार बाल्यबन्धु रासबिहारी पर था। उसी सिलसिले से यहाँ विलास का आना-जाना शुरू हुआ और कुछ दिनों से दूसरे जिस कारण में पर्यवसित हुआ, वह आगे जाहिर होगा।

करीब दो महीने हुए, वनमाली चल बसे। कलकत्ते में उनके इतने बडे मकान मे विजया अकेली ही थी। गाव की जगह-जायदाद की देख भाल रासबिहारी ही करने लगे और इसी सूत्र से वे एक प्रकार से उसके अभिभावक भी बन बठे। लेकिन खुद गाँव मर रहते थे, लिहाजा विजया की निगरानी की सारी जिम्मेदारी उनके बेटे विलासबिहारी पर पडी। सही मानो मे वही उसका अभिभावक बन गया।

उन दिनो इस समय प्रत्येक ब्राह्म परिवार मे सत्य, सुनीति, सुरुचि आदि शब्द खासतौर से बडा बनाकर सिखाये जाते थे। इसलिए कि बाहर पढने के लिए आकर हिन्दू नौजवान जब पिता-माता के खिलाफ, देवी-देवता के खिलाफ, प्रतिष्ठित समाज के खिलाफ विद्रोह करके इस समाज की जिल्दबँधी बही मे नाम लिखा बैठते थे, तो यही शब्द सहारा देकर उनके कच्चे माथे को गर्दन पर सीधा टिकाये रखते थे—झुककर लुढक नही जाने देते थे। वे कहते, जिसे सत्य समझो, वही करो। मा का बल है आँसू और बाप का दीर्घ-विश्वास— कुछ देखने-सुनने की जरूरत नही। इन कमजोरियो को हर कोशिश करके दूर करना, वरना प्रकाश के दर्शन न होगे। ये बातें विजया ने भी सीखी थी।

आज विलास बाबू गाव से बूढ़े और शराबी जगदीश के मरने की खबर ले आए थे। जगदीश बाबू विजया के पिता के दोस्त जरूर थे, लेकिन विलास ने जब बताना शुरू किया कि जगदीश शराब के नशे में किस तरह छत से गिर कर मरे, तो ब्राह्मधर्म की सुनीति को याद करके अपने पिता के अभागे बाल्य-बन्धु के लिए घृणा से होठ भीचने मे उसे जरा भी हिचक नही हुई। विलास कहने लगा, जगदीश मुखर्जी मेरे पिता के भी छुटपन के साथी थे, लेकिन पिता जी ने नौकर से उन्हे फाटक के बाहर निकलवा दिया था। पिता जी कहते हैं, ऐसे बदचलनो को प्रश्रय देने से मंगलमय भगवान के चरणो मे अपराध बनता है।

विजया ने हामी भरी—बिल्कुल सही है।

उत्साहित होकर विलास भाषण के ढग से कहने लगा—दोस्त हो चाहे जो हो, कमजोरी के चलते ब्राह्म समाज के चरम आदर्श को आच लगाना उचित नही। जगदीश की सारी जायदाद अब न्यायत हमारी है। उसका लडका अगर बाप का कर्ज चुका सके तो ठीक ही है, नही तो कानूनन इसी दम हमे सब कुछ पर कब्जा कर लेना चाहिये। छोड देने का वास्तव मे हमे कोई हक नही। क्योकि इन रुपयो से हम बहुत से अच्छे काम कर सकते हैं। समाज के किसी लडके को विलायत तक भेज सकते हैं धर्म प्रचार मे लगा सकते है, कितना कुछ कर सकते हैं। फिर क्यो वैसा न करें? फिर जगदीश बाबू या उनका लडका हमारे समाज का नही कि उस पर किसी प्रकार की कृपा करना जरूरी है। आपकी राय हो तो पिताजी सब ठीक कर लेंगे, इसी के लिए उन्होने मुझे आपके पास भेजा है।

विजया अपने स्वर्गवासी पिता की बात को याद कर सोचने लगी, हठात् कोई उत्तर न दे सकी। उसे आगा पीछा करते देख विलास जोर से दृढतापूर्वक बोल उठा—आपको आनाकानी हरगिज न करने दूँगा। दुविधा दुर्बलता पाप है। सिर्फ पाप क्यो, महापाप! मैंने मन ही मन सकल्प किया है, उसके मकान मे आपके नाम से जो कही नही है, कही नही हुआ वही करूँगा। गाँव मे ब्राह्म मन्दिर कायम करके देहात के अभागे मूर्ख लोगो को धर्म शिक्षा दूँगा। आप एक बार सोच तो देखें सही इन्ही की बेवकूफी के चलते आपके स्वर्गीय पिताजी ने गाँव छोड दिया था या नही! उनकी लडकी होने के नाते क्या आपके लिए उचित नहीं—ऐसा नोबुल बदला लेकर उन्ही का चरम उपकार करना! कहे, आप ही इसका जवाब दें।

विजया विचलित हो उठी। विलास उद्दीप्त स्वर से कहने लगा देश भर मे कितना बडा नाम होगा, कैसी एक हलचल मच जायगी जरा सोच तो देखिए। हिन्दुओ को यह मानना ही पडेगा—यह जिम्मा मेरा—कि ब्राह्मसमाज मे भी आदमी हैं, दिल है, स्वार्थत्याग है। जिन्हे कभी उन लोगो ने सताकर निकाल दिया था, उसी महात्मा की महीयसी बेटी ने उनके कल्याण के लिए ऐसा महान त्याग किया है। हिन्दुस्तान भर मे इसका कैसा एक मोरल इफेक्ट

होगा, कहिए तो। और विलास बिहारी ने सामने की मेज पर जोरो की एक थाप लगाई।

सुनते-सुनते विजया मुग्ध हो गई थी। सच ही, इतने बडे लोभ को रोक सकना अट्ठारह साल की लडकी के लिए मुमकिन नही। उसने पूरी सहमति जाहिर करते हुए कहा, सुना है, उनके लडके का नाम है नरेन पता है आपको, कहाँ हैं वे इन दिनों ?

पता है। अभागे पिता की मृत्यु के बाद वह घर आया है, उनका श्राद्ध करने आजकल वही है।

आपसे जान पहचान है शायद।

जान पहचान ? छि। आप मुझे क्या समझती हैं, कहिये तो। और विजया को अप्रतिम बताते हुए जरा हँस कर बोला—मैं सोच भी नही सकता कि जगदीश मुखर्जी के लडके से मैं जान पहचान करूँ। हा, उस दिन अचानक रास्ते मे पागल जैसा एक नए आदमी को देखकर अचरज मे पड गया था। पता चला, वही नरेन मुखर्जी है।

कौतूहल से विजया बोली—पागल जैसा। सुना, डाक्टर हैं।

नफरत से सारे शरीर को सिकोडता सा विलास बोला—एक बारगी पागल जैसा। डाक्टर ? मुझे तो यकीन नहीं आता। बडे-बडे बाल, जितना लम्बा, उतना ही दुबला। पजरे की एक-एक हड्डी दूर से गिन लीजिये—यह तो शक्ल है। सीकिया पहलवान समझिये छि —

चेहरे पर नाज करने का हक वास्तव मे विलास का था। मोटा, मोटा और भारी भरकम जवान। दम मारकर उसके पजरे की हड्डिया नही बताई जा सकती। जानें और भी क्या कहने जा रहा था वह कि विजया ने टोक कर पूछा—जगदीश बाबू का घर सच ही अगर हम दखल कर लें तो बस्ती मे घिनौनी हलचल भी नही होगी।

विलास ने जोर देकर कहा—बिल्कुल नही। पाच सात गाँवो में आपको एक भी ऐसा आदमी न मिलेगा, जिसे उस शराबी पर जरा भी हमदर्दी रही हो। हलके मे 'अहा' करने वाला भी कोई नही। फिर जरा हँसकर बोला—लेकिन ऐसा न भी होता तो मेरे जीते जी मन मे यह चिन्ता लाना भी आपके

लिए उचित नहीं। मगर मैं बताऊँ कम से कम कुछ दिनों के लिए भी आपका एक बार गाँव जाना जरूरी है।

विजया हैरान सी होकर बोली—मो क्यों ? हम तो कभी वहाँ नहीं गए।

उद्दीप्त कण्ठ से विलास बोला—तभी तो कहता हूँ, आपको जाना ही चाहिये अपनी महारानी को देखने का सौभाग्य रैयतों को दीजिए। मेरी तो निश्चित धारणा है, इस सौभाग्य से प्रजा को वंचित रखना महापाप है।

शर्म से विजया का चेहरा तमतमा उठा, सिर झुकाए वह कुछ कहना ही चाहती थी कि बाधा देकर विलास बोल उठा—इसमें झिझक की कोई बात ही नहीं। सोच देखिये जरा वहाँ कितना काम करना है आपको। यह बात मैं आपके मुँह पर कह सकता हूँ कि सारे इलाके का मालिक होते हुए भी कुछ पगले कुत्तों के डर से आपके पिताजी जो फिर कभी गाँव नहीं गये, यह क्या उन्होंने अच्छा किया ? यही क्या अपने ब्रह्म समाज का आदर्श है ? समाज का यह आदर्श तो नहीं इसमें भूल क्या !

विजया जरा चुप रह कर बोली—लेकिन मैंने पिताजी से सुना था, वहाँ का घर रहने लायक नहीं है।

विलास बोला—आप हुक्म दीजिए कहिए कि आप वहाँ जायेंगी, फिर देखिए दस दिन के अन्दर मैं उसे रहने योग्य बना देता हूँ। मेरा भरोसा कीजिए, मैं जी जान से यह इन्तजाम कर दूँगा कि वह घर आपकी मर्यादा के अनुकूल हो। हाँ, एक बात जबान से मेरे जी में आती है—आपको सिर्फ सामने रख कर मैं क्या कर सकता हूँ, इसका हद हिसाब नहीं।

विजया को राजी करके विलास जब चला गया, तो वह वहीं चुप बैठी रही। अपना गाँव, जन्म से आज तक कभी वह वहाँ गई जरूर नहीं, लेकिन कभी कभी पिताजी की जबानी उसके बारे में कितना कुछ सुना दिया। गाँव की बातें करते वे थकते न थे। लेकिन उस समय गाँव की कहानी में उसका मन नहीं बटता था सुनती और भूल जाती थी। किन्तु आज जाने कहाँ से वही सारे भूले हुए विवरण अकस्मात् आकर उसकी आँखों में साकार हो गये।

उसे लगने लगा, उसके गाव का मकान कलकत्ते को इस इमारत जैसा बडा और भडकीला न हो चाहे, मगर वही तो अपन पुरखो की बुनियाद है। उसी मे अगर दादा-दादी, परदादा परदादी, उनके मा-बाप और ऐसे जाने कितने पुश्तो के सुख दुख, उत्सव आनन्द म दिन कटे, तो उसी के दिन क्यो नही कटेंगे ?

गली के सामने हाजरा परिवार के तिमजले की ओट म सूरज छिप गया। इसी पर पिता से उसकी जानें कितनो बातें हो चुकी थी। उसे याद आया, कितनी बार साझ को उस आराम कुर्सी पर बठे दीघ निश्वास छोडते हुए कहा था, विजया, अपने गाव वाले मकान म मैंन यह तकलीफ कभी नही पाई। वहाँ कभी किसी हाजरा का तिमजला मेरे अन्तिम सूर्यास्त को इस तरह ढक कर नही खडा हुआ। तुझे तो मालूम नही है बेटी, लेकिन मेरी जो दो आखें कलेजे के भीतर से उमक कर झाँक रही है, वे साफ देख रही हैं कि अपनी फुलबगिया के किनारे की वह छोटी सी नदी इस समय सीने के पानी से टलमल कर उठी है, बैहार और बैहार के उस पार सूरज जाते जाते भी गाँव की ममता छोड कर जा नही पा रहा है। यही तो बिटिया, गली के मोड पर देख ही रही हो, दिन का काम चुका कर जन प्रवाह घर की ओर बह रहा है, परन्तु दस बारह हाथ की उस जगह को छोड कर उनके साथ जाने की तो और जरा सी राह नही। साझ को वहा भी घर की ओर इसी तरह उलटे स्रोत को बहते देखा है, मगर बिटिया, वहा के एक एक गाय बछडे का गोशाला तक को जानता था। इतना कहकर सदय से एक बडी ही गहरी सास छोड वे चुप हो रह। कभी इस गाँव को वे छोड आए थे—इतनी धन-दौलत के बाच भी उसके लिए उनका जी रोता रहता था विजया को जब तब इसका पता चलता था। तो भी भूल कर भी कभी उसने इसकी वजह नहीं सोच देखी थी, आज उसके ध्यान को उधर खीच कर विलास जब चला गया, तो स्वर्गीय पिता की बातो को विसूरते हुए एकाएक क्षण भर मे ही उनकी छिपी वेदना का कारण उसकी आखो मे तिर आया। कलकत्ते के इस विशाल अनारण्य म भी वे किस तरह एकाकी दिन बिता गए, अपनी आँखो मे उसे देख वह एक बारगी डर गई और ताज्जुब की बात यह कि जिस गाव, जिस घर से उसका कभी का परिचय नही, आज वही उसे दुर्दम शक्ति से खींचने लगा।

विलास की देख-रख में जमाने से यों ही पड़े जमींदार भवन की मरम्मत होने लगी। बैलगाड़ियों पर लद-लद कर अनोखे अनोखे असबाब कलकत्ते से रोज आने लगे। जमींदार की इकलौती बेटी गांव में रहने के लिए आ रही है, इस खबर का फैलना था कि न केवल कृष्णपुर, बल्कि राधापुर, व्रजपुर, दिघड़ा आदि अगल बगल के पांच-सात गांवों में हलचल मच गई। एक तो जमींदार का घर के पास बसना ही सदा से लोगों के लिए अप्रिय है, फिर रियाया तो इनके न रहने की ही आदी रही हैं। सो नए सिरे से उनके यहां बसने की ख्वाहिश ही लोगों को एक उपद्रव-सी लगी। मैनेजर रासबिहारी के शासन से उन्हें कष्टों का अभाव नहीं था, फिर जमींदार की बेटी के आने के शुभ अवसर पर वह कौन-कौन सा नया जुल्म ढाएगा, वह हाट-बाट घाट में आलोचना का विषय बन गया था। जमींदार वनमाली खुद जब तक जिन्दा थे, तब तक दुखों के बावजूद इतनी सी सुविधा थी कि किसी तरह कलकत्ते तक पहुंच कर उन तक दुखड़ा पहुंचाए तो किसी को निराश नहीं लौटना पड़ता था। लेकिन जमींदार की बिटिया की उम्र थोड़ी, दिमाग गरम, रासबिहारी के लड़के से उसकी शादी की चर्चा भी गांव में अप्रचारित न थी—मेमसाहब ठहरी, म्लेच्छ, लिहाजा आगे आने वाले रासबिहारी के जुल्मों की कल्पना से किसी के मन में जरा भी चैन न रही—जनेऊधारी ब्राह्मणों को भी नहीं जनेऊ विहीन शूद्रों को भी नहीं। ऐसे ही भय और चिन्ता में वर्षा निकल गई। शरद की शुरुआत में ही एक मधुर प्रभात में दो बड़े वेलर जुड़ी खुली फिटन पर जमींदार की जवान बेटी सैकड़ों नर नारियों की भांति-कौतूहल भरी निगाहों के सामने होकर हुगली स्टेशन से बाप दादे के पुराने मकान में आ पहुंची।

बंगाली की लड़की, अठारह उन्नीस साल पार कर गई, मगर शादी नहीं हुई—खुले आम जूता मोजा पहनती है, खाने पीने का कोई विचार-परहेज नहीं, आदि-आदि लोग छिपे छिपे करने लगे और एक एक, दो दो करके लोग नजराना लिए आने तथा आनंद और कल्याण-कामना भी कर जाने लगे। इस

तरह पाच छ दिन बीत गए। सुबह की चाय वाय पीकर नीचे के बैठके मे विजया विलास बाबू से जमीन जायदाद के बारे मे बातें कर रही थी कि बरा ने आकर खबर दी, कोई सज्जन मिलना चाहते है।

विजया बोली—उन्हें यहा लिवा लाओ।

इन दिनो तक भले बुरे प्रजा-लोग नजराना लेकर जब तब आते रहे थे, लिहाजा पहले तो विजया ने ऐसा कुछ ख्याल नही किया। जरा ही देर मे बैरा के पीछे पीछे जो भला आदमी अन्दर आया उसे देखकर विजया हैरत मे पड गई। उम्र करीब चौबीस-पच्चीस की होगी। लम्बा कद, लेकिन उस हिसाब से तन्दुरुस्त नही, बल्कि दुबला-पतला। गोरा चिट्टा रग, दाढी मूँछ घुटी हुई, पैरो म चट्टी, बदन पर कुरता नही, सिर्फ एक गाढी चादर की फाक मे से सफेद जनेऊ दिखाई पड रहा था। उसने नमस्कार किया और एक कुर्सी खीच कर बैठ गया। इससे पहले जो भी भला आदमी अन्दर आया, यह नही कि वह सिर्फ नजराना लेकर आया, बल्कि झिझकते हुए अन्दर आया। लेकिन इस आदमी के आचरण मे सकोच की बू तक न थी। उसके आने से केवल विजया ही विस्मित न हुई, विलास को भी कुछ कम आश्चर्य नही हुआ। दूसरे गाँव का होते हुए भी विलास इधर के सभी भले लोगों को पहचानता था, लेकिन यह युवक उसका बिल्कुल अजीब था। आनेवाले भलेमानस ने ही बात की। कहा, मेरे मामा पूर्ण गागुली आपके पडोसी है, यह बगलवाला मकान हो उनका है। सुनकर मैं दग रह गया कि बाप दादा के जमाने से उनके यहा जो दुर्गापूजा चली आती है, उसे क्या आप इस साल बन्द कर देना चाहती है? इसका क्या मतलब? कहकर उसने विजया पर अपनी निगाह रोपी। सवाल और उसके पूछने के ढग से विजया चकित हुई तथा मन ही मन खीझी, लेकिन कोई जवाब नही दिया।

जवाब दिया विलास ने। रुखाई के साथ बोला इसलिए कि आप मामा की ओर से झगडने आये है? लेकिन यह न भूल जायें कि आप बातें किससे कर रहे है।

हँसकर आगन्तुक ने जरा जीभ काटी। बस, मैं वह भूला नही हूँ नही झगडने आया हू। बल्कि मुझे इस पर यकीन नही आया, इसीलिए ठीक-ठीक

जान जाने को आया हूँ।

व्यंग करके विलास ने कहा—यकीन क्यों नहीं आया ? आगंतुक बोला—कैसे आए, कहिए तो ? बवजह अपने पड़ोसी के धर्म विश्वास पर आघात पहुँचायेंगे, इस पर यकीन न आना ही तो स्वाभाविक है।

धर्म पर वाद विवाद विलास को छुटपन से ही बड़ा प्रिय है। उत्साह से वह उमग उठा और छिपे व्यंग से बोला—आपके बवजह समझने ही से जो किसी के लिए उसका अर्थ न होगा या आपके धर्म कहने से ही सभी उसे सिर आँखों उठा लेंगे, इसका कोई हेतु नहीं। पुतले की पूजा हमारे लिए धर्म नहीं और उसकी मनाही करना भी मैं अनुचित नहीं समझता।

आगंतुक ने गहरे अचरज से विजया की ओर देखकर पूछा—आपका भी यही कहना है क्या ?

आगंतुक के अचरज ने विजया को मानो चोट की, लेकिन उस भाव को छिपा कर उसने सहज ही स्वर में कहा—मुझ से क्या आप खिलाफ राय सुनने की उम्मीद करके आये थे ?

गर्व से हँसकर विलास ने कहा—शायद। लेकिन यह तो विदेशी है, मुमकिन है, आप लोगों का कुछ भी नहीं जानते।

आगंतुक कुछ देर तक चुपचाप विजया की तरफ देखता रहा, फिर उसी से बोला—विदेशी तो मैं नहीं हूँ, तो भी इस गाँव का नहीं हूँ—यह ठीक है। लेकिन फिर भी सचमुच मैंने आपसे यह आशा नहीं की थी। पुतले की पूजा की बात गरचे आपके मुँह से नहीं निकली, साकार निराकार के पुराने पचड़े को मैं यहाँ नहीं उठाना चाहता। आप लोग ब्राह्म-समाज के हैं, यह भी जानता हूँ मैं। लेकिन यह तो वह बात नहीं। गाँव में यही एक पूजा होती है। सब लोग वर्ष भर इन्हीं तीन दिनों की बेसब्री से इंतजार करते रहते हैं। आगंतुक ने फिर एक बार तीखी निगाहों देखा—गाँव आपका है, प्रजा आपकी संतान के समान है, आपके आने से गाँव का आनंद-उत्सव सौ गुना बढ़ जायगा, यही उम्मीद तो सभी करते हैं। लेकिन उसके बजाय इतना बड़ा दुःख इतनी बड़ी नाखुशी बिना किसी कसूर के अपनी दुखी रियाया के माथे खुद लाद देंगी यह विश्वास करना क्या सहज है ? मैं तो विश्वास

नही कर सका ।

विजया से सहसा उत्तर देते न बना। दुखी प्रजा के नाम से उसका कोमल हृदय व्यथा से भर गया। जरा देर के लिए कोई कुछ न बोल सका, केवल विलास विजया के उस स्नेह विचलित चेहरे की ओर देखकर भीतर-भीतर उष्ण और उद्विग्न हो हिकारत का भगी से बोल उठा—आप बहुत बोल रहे हैं। साकार निराकार का तर्क आपके साथ करें, इतना फिजूल समय हमे नही है। खैर भाड म जाय वह, आपके मामा एक सौ पुतल बनवा कर घर बैठे पूजा कर सकते ह, हम इसम कोई एतराज नही केवल इनके कान के पास रात दिन ढोल ढाक पीट कर इनको तबीयत नासाज करने म ही आपत्ति है।

आगन्तुक जरा हँसकर बोला—रात दिन तो नही बजता। हो-हल्ला तो थोडा-बहुत हर उत्सव समारोह मे होता है—फिर खास विजया को लक्ष्य करके कहा—थोडी असुविधा हुई भी तो क्या! आप हैं मा की जात इनके आनन्द के अत्याचार-उपद्रव को आप न सहगी तो कौन सहेगा?

विजया वैसी ही चुप बनी रही। श्लेष की सूखी हँसी हँसकर विलास ने कहा—अपना काम बनाने के लिए आप तो सन्तान की उपमा दे बैठे, सुनने मे भी बुरा न लगा। लेकिन मैं पूछता हू, आप ही अगर मुसलमान होकर मामा के कानो के पास मुहरम शुरू कर देते तो यह सुहाता क्या? खैर चाहे जो हो, आपसे बक-बक करने का समय हम लोगो को नही है, पिताजी ने तो हुक्म दिया है, वही होगा। कलकत्ते से यहा आकर खामखा दुनिया भर का ढोल-ढाक पिटवा कर इनके कान की दुगत हम नही करने देंगे—हर्गिज नही।

उसके भद्दे व्यग और उस्मा की ज्यादती से आगन्तुक की आखो की निगाह तेज हो गई। विलास की ओर नजर उठाकर उसने कहा—आपके पिता कौन हैं और उन्हें मना करने का क्या अधिकार है, मुझे मालूम नही है। लेकिन आपने मुहरम की जो अनोखी मिसाल दी, यह हिन्दुओं की शहनाई के बजाय कही मुसलमानो के मुहरम के ताशे होते तो आप क्या करते? यह बेचारे स्वजातियो पर अत्याचार के सिवाय और क्या है?

विलास यकायक चौकी पर से उछल पडा। आँखें लाल पीली करके

भयानक स्वर से चीख कर बोला—पिताजी के बारे में तुम सँभल कर बातें करो कहे देता हूं, वरना मैं दूसरी तरकीब से तुम्हें सिखा दूँगा कि वे कौन है और उन्हें क्या अधिकार है।

आगन्तुक ने हैरान होकर विलास की तरफ ताका, पर डर की कोई निशानी उसके चेहरे पर न दीखी। वह दिखाई दी विजया के चेहरे पर। उसी के घर में उसी के एक अपरिचित अतिथि के प्रति ऐसे अभद्र आचरण से क्रोध और लज्जा के मारे उसका सारा चेहरा लाल हो उठा। आगन्तुक एक क्षण विलास के मुँह की ओर देखता रहा, दूसरी ही क्षण उसकी बिल्कुल उपेक्षा करते हुए विजया की ओर नजर करके कहा—मेरे मामा बड़े आदमी नहीं हैं, उनकी पूजा का आयोजन भी मामूली है। मगर यही आपकी सारी दुखिया प्रजा के वर्ष भर का एकमात्र आनन्द-उत्सव है। शायद हो कि इससे आपको थोड़ी असुविधा हो, लेकिन उन बेचारे का मुँह देखकर क्या आप इतना भर नहीं बर्दाश्त कर सकेंगी?

क्रोध से लगभग पागल होकर विलास ने सामने की टेबिल पर बड़े जोरों का मुक्का जमाया और चीख उठा—नहीं, नहीं कर सकेंगी, हजार बार नहीं कर सकेंगी। महज कुछ बेवकूफ खेतिहरों के पागलपन को बर्दाश्त करने के लिए कोई जमींदारी नहीं करता। तुम्हें और कुछ न कहना हो तो अपनी राह लो झूठमूठ में हमारा समय मत बर्बाद करो। और उसने हाथ से दरवाजा दिखा दिया।

उसकी इस उत्कट उत्तेजना से जरा देर के लिए आगन्तुक मानो किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। तुरन्त उसके मुँह से कोई जवाब न फूटा। लेकिन पिता से विजया को निष्फल शिक्षा नहीं मिली थी, वह शान्त और धीर भाव से विलास की तरफ देखती हुई बोली—आपके पिताजी मुझे बेटी के समान प्यार करते हैं, इसीलिए इनकी पूजा उन्होंने बन्द कराई है, मगर मैं कहती हूं, दो चार दिन थोड़ा हो हल्ला हुआ ही तो क्या।

बात पूरी भी नहीं करने दी कि विलास उसी तरह चिल्ला कर बोल उठा—वह हो हल्ला असह्य है। आप जानती नहीं हैं, इसलिए—

विजया ने हँसते हुए कहा—सो हो हल्ला तीन ही दिन तो! आप

मेरी असुविधा की चिन्ता कर रहे हैं, मगर कलकत्ता होना, तो क्या करते कन्हि ता वहाँ कोई काना रे पास आठा पहर तोप भी दागता होना ता चू न्यिे बिना महना पडता ? कहकर आर तुक गुमर का आर मुसानिब हा वह हँसती हुई बोली— इन मामा से आप गन्थि न हर बार जम परत है इम बार भी वैसे ही पूजा करें मुझे जरा भी आपत्ति नहीं।

जाग तुम और विलास बाबू, दोनों अचरज से अवाक् में विजया के मुँह की ओर देखते रहे।

तो अब आप पधारें कहना हुई विजया न धीरे से नमस्कार किया। वह अजाना भद्रमानस अपने को जब्त करके उठ खड़ा हुआ तथा नमस्कार और शुक्रिया अदा कर विलास को भी नमस्ते करके धीरे धीरे बाहर चला गया। क्रुद्ध विलास ने दूसरी ओर मुँह फेर कर उसे अस्वीकार किया, लेकिन दोनों में से कोई भी न जान पाया कि यहा अपरिचित युवक उनका असली मुलजिम जगदीश का बेटा नरेन्द्र नाथ है।

५

उसके चले जाने के बाद, मिनट भर अनमनी और चुप रह कर सहसा सचकित हो सिर उठाते ही विजया के गाल पर चाहमना ही एक रंगीन आभा झलक पड़ी। विलास की नजर दूसरी तरफ न लगी होती, तो उसके अचरज और अभिमान की हद नहीं रह जाती। हलका हँसकर विजया ने कहा— हमारी बात तो आखिर अधूरी ही रह गई। तो वह तालुका ले ही लेने की राय है आपके पिताजी की ?

विलास खिड़की से बाहर देख रहा था उसी स्थिति में बोला— हूँ।

विजया ने पूछा—लेकिन उसमें किसी तरह का झमेला तो नहीं है ?

विलास बोला—नहीं।

विजया ने फिर पूछा—आज उस बला क्या व इधर आएँगे।

विलास बोला—वह नहीं सकता।

हँसकर विजया ने पूछा—आप नाराज हो गए क्या ?

अबकी पलट कर गंभीर भाव से विलास ने जवाब दिया—नाराज न भी हो तो पिता के अपमान से पुत्र का क्षुब्ध होना शायद अस्वाभाविक नहीं।

इस बात ने विजया को चोट पहुँचाई, फिर भी वह हँसते हुए ही बोली—लेकिन इससे उनका अपमान हुआ, यह गलत ख्याल आपको कैसे हुआ ? उन्होंने स्नेह से सोचा कि इससे मुझे कष्ट होगा, लेकिन कष्ट नहीं होगा, इतना ही मैंने उस भले आदमी को बता दिया। इसमें मान-अपमान की तो कोई बात नहीं है विलास बाबू !

विलास की गम्भीरता इससे जरा भी कम न हुई। उसने सिर हिलाकर जवाब दिया—यह कोई बात ही नहीं। खैर, अपनी जमींदारी की जिम्मेदारी खुद लेना चाहती हैं लें लेकिन अब मुझे पिताजी को सावधान कर ही देना पड़ेगा नहीं तो मेरे पुत्र के फर्ज में आँच आएगी।

इस अनसोचे रूखे उत्तर से विजया अचरज से अवाक रह गई और जरा देर सन्न सी रहकर बड़े दुःख के साथ कहा विलास बाबू, इस निहायत मामूली बात को आप इतनी बड़ी कर लेंगे, यह मैंने सोचा तक नहीं। खैर, अपनी नासमझी से मुझसे भूल ही बन पड़ी है तो मैं कबूल किए लिए लेती हूँ आइन्दा ऐसा न होगा। यह कह कर विलास की तरफ देखकर उसने एक दीर्घ निश्वास फेंका। उसका ख्याल था इसके बाद किसी को कुछ कहने को नहीं रह जाता, गलती मान लेने के साथ ही साथ बात खत्म हो जाती है। किन्तु उसे यह बात मालूम न था कि दुष्ट व्रण की तरह ऐसे भी आदमी हैं, जिनकी जहरीली भूख किसी की त्रुटि में एक बार शरण पा जाये तो वह किसी भी कदर मिटना नहीं चाहता। इसीलिए प्रत्युत्तर में जब विलास ने कहा, तो फिर पूर्ण गांगुली को आप कहला भेजें कि रासबिहारी बाबू ने जो हुक्म दिया है, उसे रद्द करने की मजाल आपको नहीं है—तो विजया की आँखों के सामने इस आदमी का हिंसक स्वभाव एक तरह से साफ प्रकट हो गया। कुछ क्षण चुप चाप ताकती रही वह, फिर धीरे धीरे बोली—क्या यह बहुत अधिक अनुचित न होगा ? खैर, न हो तो मैं खुद ही चिट्ठी लिख कर उनकी अनुमति लिए

लेती हू। —उपन्यास ६८८

विलास बोला—अब अनुमति लेना न लेना बराबर है। आप अगर तमाम गाव मे उन्हे अश्रद्धा का पात्र बना देना चाहती हैं, तो मुझे भी बडे ही कठोर कर्त्तव्य का पालन करना होगा।

विजया का हृदय सहसा क्रोध से भर उठा। लेकिन अपने को पीकर उसने धीरे से कहा—वह कर्त्तव्य क्या है, सुनूँ जरा। विलास बोला—यही कि आपकी जमीदारी के शासन मे वे हाथ न डालें।

आपकी मनाही वे मानेंगे, यह यकीन है आपको ?

कम से कम यही कोशिश मुझे करनी होगी।

विजया कुछ देर चुप रही। दूसरी तरफ ताकती हुई वैसे शान्त कण्ठ से ही बोली—खैर, आपसे जो बने, करें, मैं लेकिन दूसरे के धर्म-कर्म मे रुकावट नही डाल सकती।

उसकी आवाज शान्त थी, फिर भी अन्दर का गुस्सा छिपा न रहा। विलास ने तीखे स्वर म कहा—आपके पिताजी लेकिन यह कहने की हिम्मत नहीं करते।

विजया पलट कर खडी हो गई। नजर उठाकर उसे देखा। बोली—अपने पिता जी की बात आपसे मैं ज्यादा जानती हू विलास बाबू। मगर उस पर विवाद करके लाभ क्या है ? मेरा नहाने का समय हो गया, मैं जाती हूँ। और सारे बाद विवाद को जबदस्ती बन्द करके उठ खडे होते ही गुस्से से पागल विलास के चेहरे पर से उधार लिया हुआ भद्रता का मुखडा पल भर मे खिसक पडा। उसने खुद भी अपने स्वभाव को एक बार भी उघार कर नगा करके बडे ही तीखे स्वर मे कहा—औरतो की जात ही ऐसी नमकहराम होती है। विजया कदम उठा चुकी थी। बिजली की गति से मुडकर खडी हो गई। एक क्षण उस बर्बर के चेहरे पर नजर डालकर वह चुपचाप धीरे-धीरे कमरे से बाहर चली गई और साथ ही साथ विलास का चेहरा सूख गया।

किसी को यह भ्रम न हो कि वह पितृ भक्ति की प्रबलता से विवाद कर रहा था। ऐसे लोगो का किरदार ही ऐसा होता है कि जो मिले ता उसे

करके कमजोर को सताने में, डरे हुए को और भी डरा कर व्याकुल कर देने में ही खुशी हासिल करते हैं, वह चाहे कुछ भी हो और कारण चाहे जितना ही ऊपर ऊपर का हो। लेकिन विजया जब जरा भी झुके बिना उसी को तुच्छ करके घृणा बिखेरती हुई चली गई तो यह जबरदस्ती पड़कर झगड़ने की क्षुद्रता ने उसे खुद अपने आगे भी बड़ा छोटा बना दिया। वह जरा देर चुप बैठा रहा और फिर स्याह सूरत लिए धीरे धीरे घर चला गया।

तीसरे पहर रासबिहारी लड़के के साथ उससे मिलने आए। बोले—काम यह अच्छा नहीं हुआ बिटिया। मेरे हुक्म के खिलाफ हुक्म देने से मेरी बड़ी हेठी हुई है। खैर, जायदाद जब तुम्हारी है तो इस बात को ज्यादा मथना नहीं चाहता मैं। लेकिन अगर बार बार ऐसा हुआ तो अपने आत्म सम्मान के नाते मुझे अलग हो जाना पड़ेगा, यह कह देता हूँ।

विजया ने कोई जवाब नहीं दिया बल्कि चुप रह कर उसने गलती को इस प्रकार से कबूल ही कर लिया।

इस पर रासबिहारी नरम से पड़े। उन्होंने जायदाद के बारे में बात करना शुरू की। नया तालुका खरीदने की बात खत्म करके बोले, जगदीश वाला मकान जब तुमने समाज को ही दान कर दिया, तो पूजा की छुट्टी खत्म होते ही उस पर दखल लेना होगा क्या?

गर्दन हिलाकर विजया ने कहा, आप जो ठीक समझें, वही होगा। रुपए चुकाने की मीयाद तो पूरी हो चुकी उनकी।

रासबिहारी ने कहा—कब की। अपना सारा छिटफुट कर्ज एक करने की नीयत से जगदीश ने तुम्हारे पिता जी से आठ साल की मुद्दत पर दस हजार रुपये लेकर कबाला लिख दिया था। शर्त थी, इस अरसे में रुपये चुका सकें तो ठीक, वरना उसका घर द्वार, बाग तालाब—सारी जायदाद ही हमारी हो जाय।। आठ साल तो कब का पूरा हो चुका, यह नौवां चल रहा है।

विजया कुछ देर तक सिर झुकाए चुप बैठी रही। उसके बाद मृदु स्वर में बोली—मैंने सुना है, उनके लड़के यहीं हैं उन्हें बुलवा कर कुछ दिनों का [illegible]र और दिया जाय, तो न हो शायद कुछ कर सकें?

सिर हिला कर रासबिहारी ने कहा—कुछ नहीं कर सकेंगे, कुछ नहीं।

कर पाते तो—

पिता की बात पूरी भी न हो पाई थी कि विलास चीख उठा। अब तक वह किसी कदर धीरज धरे था, अब न रहा गया। कर्कश स्वर में बोल पड़ा—कर भी पायें तो हम मौका क्या दें? रुपया लेते वक्त उस नशेबाज को यह होश नहीं था कि क्या दान कर रहा हूँ। चुकाऊँगा कैसे?

एक नजर विलास की ओर ताक कर ही उसने रामविहारी की ओर मुखातिब होकर गम्भीर कंठ से कहा—वे मेरे पिता के मित्र थे और उनके बारे में सम्मान के साथ बात करने का आदेश मुझे पिताजी दे गये हैं।

विलास फिर जोश में पड़ा—हजार दे जायें, लेकिन वह तो एक रास-बिहारी ने उसे रोका—तुम चुप रहो न विलास।

विलास बोला—ये सब फिजूल के सेंटिमेंट मुझसे किसी भी तरह सहे नहीं जाते। चाहे कोई बिगड़े या जो करे। मैं सच कहने से नहीं डरता, सच्चा काम करने में पीछे नहीं रहता।

रामबिहारी दोनों पक्ष को शान्त करने की गरज से हँसने जैसा मुँह करके बार-बार गर्दन हिलाते हुए कहने लगे—वह तो है। अपने खानदान का यह स्वभाव अपना भी तो न गया। जानती हो बेटी विजया, इसीलिए मैं और तुम्हारे पिता ने दुनियाँ भर के खिलाफ सत्य धर्म को अपनाने में खौफ नहीं खाया।

विजया ने कहा—मरने से पहले उन्होंने मुझे आदेश दिया था कि कर्ज के चलते जिसमें मैं उनके बाल्य बन्धु का घर द्वार बिकवा न दूँ। कहते कहते उसकी आँखें छलछला उठीं। स्नेहमय पिता की जो आज्ञा उनके जीते जी इसे असंगत सी लग रही थी, उनकी मौत के बाद आज वही उस दुर्लङ्घ्य आदेश जैसा बाधा कर रही थी।

विलास बोला—तो वे ही सारा कर्ज माफ क्यों नहीं कर गये यह तो बताएँ।

विजया ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। रामविहारी की ओर देखती हुई बोली—जगदीश बाबू के बेटे को बुलवाकर उन्हें स्थिति बताई जाय, मेरी यही इच्छा है।

रासविहारी बाबू जवाब दें, विलास उसके पहले ही बेहया की तरह बोल पड़ा—और कहीं वह दस साल का समय और माँगे ? तो देना पड़ेगा क्या ? तब तो यहाँ समाज कायम करने की आशा को समुन्दर की अतल गहराई में डुबो देना होगा ।

विजया ने इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया । वह रासविहारी को ही लक्ष्य करके बोली—एक बार उन्हें बुलवा कर आप क्या जान नहीं सकेंगे कि इस विषय में उनका क्या इरादा है ?

रासविहारी सरल सिर के आदमी थे । लड़के की उद्दंडता से भीतर-भीतर खीज तो जरूर, पर उसी की राय को वाजिब साबित करने के लिये जरा भूमिका के बहाने शान्त धीर भाव से बोले—देखो बिटिया, तुम दोनों के मन भेद में तीसरे आदमी का दखल देना उचित नहीं । क्योंकि तुम्हारी भलाई जिसमें है यह आज नहीं तो कल, खुद तुम्हीं जान तै कर सकोगे । इस बुड्ढे की राय-मशविरे की जरूरत न होगी । लेकिन अगर कहना हो, तो यही कहना होगा कि इस विषय में भूल तुम्हारी ही हो रही है बिटिया । जमींदारी चलाने के मामले में मुझे भी विलास से हार माननी पड़ती है—यह मैं काम के सिलसिले में बहुत बार देख चुका हूँ, अच्छा तुम्हीं बताओ, ज्यादा गरज किसे है —तुम्हें या जगदीश के लड़के को ? उसमें अगर कर्ज चुकाने की जुरत होती, तो वह खुद आकर कायिल नहीं कर देता, उसे मालूम तो है कि तुम आई हो । इस पर यदि हम भी गरज से हारकर उसे बुलवा भेजें, तो जरूर जानो वह एक लम्बी मुद्दत माँगेगा और उसका नतीजा आखिर यही निकलेगा कि [illegible] नहीं देगा और तुम लोगों का समाज प्रतिष्ठा का संकल्प भी [illegible] जायगा । [illegible] ठीक है या नहीं ।

विजया चुप रही ।

[illegible] ने [illegible] जमींदार [illegible] । [illegible] क्या [illegible] ? [illegible] होगा [illegible] विचार किया जायगा । [illegible] ख्याल है तुम्हारा ?

विजया ने [illegible] —[illegible] । [illegible] उसर [illegible]

से साफ जाहिर हुआ कि मन से उसने इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया।

रासविहारी ने आज विजया को पहचाना। उन्होंने साफ समझा, इस लड़की की उम्र कम है, लेकिन अपने पिता की जायदाद की यह मालिक है, यह वह समझती है और उसे अपनी मुट्ठी में लाने में भी समय लगेगा। लिहाजा एक ही बात पर ज्यादा खींचातानी ठीक नहीं, यह सोचकर संध्योपासना के बहाने उठ खड़े हुए। प्रणाम करके विजया चुपचाप आसन छोड़ उठ खड़ी हुई। वे आशीर्वाद करके निकल पड़े।

विजया जरा देर चुपचाप खड़ी रहकर बोली—मुझे बहुत सी चिट्ठियां लिखनी हैं—मुझसे कोई काम है आपको ?

विलास ने रूखे की नाईं कहा—नहीं। आप जा सकती हैं।

आपके लिए चाय भिजवा दूं ?

नहीं, चाय नहीं चाहिये।

अच्छा नमस्कार—कहकर विजया ने दोनों हथेलियां इकट्ठी कीं और कमरे से बाहर चली गई।

६

दिघड़ा के स्वर्गीय जगदीश बाबू का घर सरस्वती के उस पार पड़ता था। दूसरे गांव में होने के बावजूद नदी किनारे की बस विट्टियों के कारण ही बनमाली बाबू की छत से वह दिखाई नहीं पड़ता था। शरत बीत रहा था और छोटी-सी सरस्वती नदी का बरसात से बढ़ा हुआ पानी भी खत्म होता आ रहा था। किनारे से किसानों के आने जाने की राह भी चलते चलते सूख कर सख्त होती जा रही थी। बूढ़े दरवान कहैयासिंह को साथ लेकर विजया आज उसी रास्ते पर तीसरे पहर घूमने निकली थी। उस पार के बबूल, आम, खजूर के पेड़ पौधों की फांक से डूबते हुए सूरज की रंगीन आभा रह-रह कर विजया के मुखमण्डल पर आकर पड़ रही थी। वह अनमनी-सी दोनों तट के

इस तरह चीजों को देखती हुई लगातार उत्तर की ओर बढ़ रही थी कि एक जगह नजर आया नदी में कुछ बांस रखकर पार आने जाने के लिए पुल तैयार किया गया है। उसे गौर से देखने के लिए विजया पानी के पास जाकर खड़ी हुई कि देखा करीब ही बैठकर एक आदमी बंसी डाल कर मछली मार रहा है। आँखें मिलीं और उस आदमी ने सिर उठाकर नमस्कार किया। इसी ऐन वक्त विजया के चेहरे पर सूरज की किरण आकर पड़ी या नहीं नहीं जानता, लेकिन आँखें मिलने से उसका सारा मुखड़ा मानो एकबारगी रंग उठा। जो मछली मार रहा था वह पूर्ण बाबू का भाई था — जो उनकी तरफ से उस दिन उसके पास पैरवी करने गया था। विजया ने प्रति नमस्कार किया। वह उसके करीब आकर मुस्कराते हुए बोला — सांझ को घूमने के लिहाज से नदी का किनारा बेशक अच्छी जगह है। मगर सांझ को मलेरिया का डर भी कुछ कम नहीं। आपको किसी ने इसके लिए होशियार नहीं कर दिया है क्या?

सिर हिला कर विजया ने कहा नहीं, और दूसरे ही क्षण अपने को जब्त करके मीठा हँसकर बोली — लेकिन मलेरिया तो किसी को चाह कर नहीं पकड़ता। मैं तो बल्कि अनजान आ निकली हूँ, आप तो जान सुन कर पानी के किनारे बैठे हैं? अच्छा देखूँ तो क्या मछली पकड़ी आपने?

वह हँसकर बोला — पोठिया है दो घण्टे में सिर्फ दो मिली हैं। मजूरी भर भी नहीं। मगर करूँ तो क्या, आपकी तरह मैं भी लगभग विदेशी ही हूँ। बाहर ही बाहर समय बीता परिचय प्रायः किसी से नहीं। लेकिन जैसे भी हो, साँझ का समय तो काटना ही है।

गर्दन हिलाकर विजया हँसती हुई बोली — अपना ही लगभग यही हाल है। आपका मकान शायद पूर्ण बाबू के मकान के पास है?

उसने कहा — जी नहीं। हाथ से नदी के उस पार दिखाते हुए बोला — मेरा मकान वह वहाँ है दिघड़ा में। बांस के इस पुल पर से जाना पड़ता है।

गाँव का नाम सुनकर विजया ने पूछा — फिर तो आप शायद जगदीश बाबू के लड़के को पहचानते होंगे?

उसने गर्दन हिलाई कि एकाएक कौतूहल से विजया ने पूछा — आदमी कैसे हैं वे, बता सकते हैं आप?

कह तो गई पर तुरन्त अपने इस अभद्र प्रश्न से लज्जित हो उठी। उसकी यह लाज उस आदमी की नजर से बची न रही। वह हँस हँस कर बोला—कर्ज के बदले उसका मकान तो आपने ले ही लिया, अब उसके बारे में खोज पूछ से क्या लाभ? लेकिन जिस अच्छे उद्देश्य से लिया है, उसे भी इलाके के लोगों ने सुना है।

विजया ने पूछा—एक बारगी से भी दिया गया—इधर यही बात फैली है!

उसने कहा— फलने की ही बात है। जगदीश बाबू का मकान आपके पास बंधक था। उनके लड़के में यह दम नहीं कि उतना रुपया चुका सके— मीयाद भी पूरी हो चुकी—सबको आखिर यह मालूम है न।

मकान कैसा है?

बुरा नहीं, खासा बड़ा मकान है। जिस काम के लिये ले रही हैं, उसके लिए अच्छा ही होगा। चलिए न, जरा दूर बढ जाने ही से तो नजर आजायगा।

चलते चलते विजया बोली—आप जब गाँव के ही हैं, तब तो सारा कुछ जानते ही होंगे। अच्छा मैंने सुना है, नरेन बाबू विलायत से अच्छी सफलता के साथ डाक्टरी पास करके आये हैं। किसी अच्छी जगह में प्रैक्टिस करके कुछ दिनों की मुहनत लेकर भी क्या पिता के कर्ज को अदा नहीं कर सकेंगे?

उस आदमी ने गर्दन हिला कर कहा—मुमकिन नहीं। मैंने सुना है, चिकित्सा करने का ही संकल्प नहीं है उनका।

विजया ने हैरान होकर पूछा—आखिर मतलब क्या है उनका, सुनूँ? इतना इतना खर्च करके विलायत जाकर इस कष्ट से डाक्टरी सीखने का आखिर फल क्या हुआ! लगता है आदमी निरा निकम्मा है।

वह भला आदमी जरा हँसा। बोला—अनहोना नहीं। लेकिन मुझे पता चला है, चिकित्सा करने के बजाय नरेन बाबू कुछ ऐसा आविष्कार कर जाना चाहते हैं, जिससे बहुत बहुत लोगों का उपकार हो। क्या तो बहुत बहुत यन्त्र वन्त्र लेकर रात दिन छान-बीन भी खूब कर रहे हैं।

चकित होकर विजया बोली—यह तो बहुत बडी बात है। लेकिन

घर द्वार ही चला जायगा, तो यह सब कैसे करेंगे ? फिर तो कमाना जरूरी होगा। अच्छा, आपको तो मालूम होगा, विलायत जान के कारण लोगो ने उन्हें जात से निकाला है या नहीं।

वह बोला—जरूर निकाला है। मेरे मामा पूर्ण बाबू उनके भी तो अपने है, तो भी व पूजा के मौके पर उन्हें अपने यहाँ बुलाने का साहस नहीं बटार सके। मगर इससे उनका कुछ नही आता-जाता। अपने काम ही मे मशगूल है, समय मिल जाता है, तो तस्वीर बनाते है—घर से निकलते ही नहीं। वह रहा उनका घर—अँगुली से उसने पेड़-पौधों से घिरी एक बड़ी-सी इमारत दिखा दी।

इतने म पीछे से बूढ़े दरबान ने याद दिलाई, काफी दूर निकल आए हैं, लौटने मे अँधेरा हो जायगा।

वह आदमी ठिठक गया—ठीक तो, बातों-बातों मे काफी दूर आ निकली।

उसे भी उसी बास के पुल से गाव जाना था, सो लौटने मे भी साथ लौटने लगी। विजया ने जानें कुछ देर क्या तो सोचा, फिर रहा, तो यह भी भरोसा नही कि उन्हें किसी अपने सगे के यहाँ भी पनाह मिलेगी ?

उसने कहा—बिल्कुल नही।

विजया फिर कुछ देर चुपचाप चलती रही, फिर बोली—वह किसी के पास जाना भी तो नही चाहते। नहीं तो इसी महीने के अन्त तक उन्हें मकान छोड़ देने का नोटिस दी गई है—और कोई होता तो कम से कम हम से भी एक बार भेंट करने की कोशिश करते।

वह बोला—या तो इसकी जरूरत नही—या कि यह सोचते है लाभ क्या है ? आप तो वास्तव म उन्हें घर मे रहने नही दे सकती।

विजया ने कहा—न भी दे सकूँ, पर कुछ दिन रहने को दिया भी तो जा सकता है। हजार कर्ज हो, किसी को उसके घर से निकाल बाहर करने म सभी को कष्ट होता है। आपकी बातो से लगता है, उनसे अपना परिचय है। क्यो सच नही है ?

वह आदमी सिर्फ हँसा कुछ बोला नहीं। वे पुल के पास आ पहुँचे

थे। अपनी 'छीप' उठा कर उसने कहा—यही मेरे गाँव का रास्ता है। नमस्कार।—हाथ उठा कर नमस्कार करके बाँसो के पुल पर से डगमगाते हुए किसी तरह पार जाकर जगल की पतली पगडण्डी पर वह ओझल हो गया।

बूढा कन्हाईसिह बडा पुराना नौकर था। उसने गोद-पीठ पर विजया को पाला था। इसीलिए उसने दरबानी के वाजिब हकूक को काफी दूर तक पार कर लिया था। नजदीक आकर उसने पूछा—यह बाबू जी कौन थे मा जी?

विजया लेकिन इतनी अनमनी हो पडी थी कि बूढे का सवाल उसके कान तक नही पहुँचा। उस झुटपुटे मे नदी तट के सारे मौन माधुर्य की कतई उपेक्षा करके जैसे स्वप्न मे हो, वह सिर्फ यही सोचती हुई आगे बढ़ने लगी कि यह कौन है, और फिर कब भेंट होगी?

रासविहारी ने कहा—हमने ही नोटिस भिजवाई है और हम ही उसे रदद करें तो और-और प्रजाओ को कैसा लगेगा, एक बार सोच तो देख बिटिया।

विजया बोली—उन्ह एक खत लिख कर क्यो नही भिजवा देते, मुझे निश्चित रूप से ऐसा लगता है कि सिर्फ अपमान के भय से वे यहा आने का साहस नही कर पा रहे है।

रासविहारी ने पूछा—अपमान कैसा?

विजया बोली—उन्होने जरूर यह सोचा है कि हम उनकी प्रार्थना मजूर नही करेंगे।

रासविहारी ने व्यग से कहा—आदमी तो बडा मानी है! तभी अपमान अपने मत्थे लेकर हम ही उसे खुशामद करके रहने देना होगा।

विजया कातर होकर बोली—उसमे भी कोई दोष नही है चाचा जी। अयाचित दया करने मे कोई शम नही।

रासबिहारी बोले—खैर, माना शर्म नही है, लेकिन हमने समाज-प्रतिष्ठा का जो सकल्प किया है, उसका क्या होगा?

विजया ने कहा—उसका हम और कोई इतजाम कर लेंगे।

मन ही मन बहुत खीझ उठे रासबिहारी, पर जाहिर म जरा हँस कर बोले—तुम्हारे पिता जी काफी दौलत छोड गये हैं, तुम दूसरा इतजाम भी कर सकती हो, मैं समझ गया, लेकिन मुझे यह तो समझा दो बिटिया कि जिसे आज तक तुमने कभी आँखों नही देखा, उसी के लिए हम सब के आग्रह को टाल कर तुम्ह इतना दद आखिर क्यों? भगवान की दया से तुम्ह और और भी प्रजा हैं, और-और भी कजदार हैं, उन सबके लिए क्या तुम यही व्यवस्था कर सकोगी या करने से कल्याण होगा—इसका तो जवाब दो विजया?

विजया बोली—आपसे कह तो चुकी हूँ, यह पिताजी का अतिम अनुरोध है। इसके सिवाय मैंने सुना है—

क्या सुना है?

खिल्ली उडाने के डर से चिकित्सा-सम्ब धी उनके अनुसधान की बात विजया न बोली सिर्फ इतना कहा मैंने सुना है, वे जात समाज से निकाले हुए है। बेघर होने से अपने सगे किसी के यहा जगह पाने का उपाय नही। इसके 'गृहहीन' की कल्पना से मुझे बडा तकलीफ होती है चाचा जी।

कण्ठ स्वर को जरा करुणा गद्गद करके रासबिहारी बोले—तुम्ह इस कम उम्र मे जब ऐसी तकलीफ होती है, तो मेरी इतनी बडी उम्र म वह तकलीफ कितनी ज्यादा हो सकती है, जरा सोच तो देखो। फिर अपने लबे जीवन म क्या मैं यह पहली बार अप्रिय कर्त्तव्य के सामने खडा हुआ हूँ? नही कर्त्तव्य मेरे लिए सदा कर्त्तव्य रहा है। उसके आगे हृदय का कोई दावा नही। वनमाला मुझ पर जो जिम्मेदारी सौप गए है जीवन के अतिम क्षण तक उस जिम्मेदारी को निबाहना ही होगा—चाहे जितना ही दुःख क्यो न उठाना पडे। या तो तुम उस जिम्मेदारी से मुझको बिल्कुल मुक्त कर दो, या फिर तुम्हारे इस असगत अनुरोध को मैं हरगिज न रख सकूँगा।

विजया सिर झुकाए चुपचाप बैठी रही। पिता के गुनाह से उसके बेगुनाह बेटे को बेघरबार कर देने का संकल्प उसके जी में जो पीड़ा दे रही थी, उम्र व औसत से ये बूढ़े जो उससे आठ गुनी ज्यादा पीड़ा सहनकर भी कर्त्तव्य पालन को कटिबद्ध हुए हैं, इसे वह ठीक-ठीक ग्रहण नहीं कर सकी—बल्कि यह उसे एक बेसहारा अभागे पर बलवान की नितांत निष्ठुरता-सा ही दुखाने लगा। लेकिन जोर करके मनमाना करने का साहस भी उसे न था। फिर यह भी उससे छिपा न था कि गाँव में धूम धाम से ब्राह्म मन्दिर प्रतिष्ठा के यज्ञ के लोभ से ही बूढ़े पिता की आड़ में विलास बिहारी यह जिद और जबदस्ती कर रहा है।

रासबिहारी और कुछ नहीं बोले। कुछ देर चुप बैठी रह कर विजया ने भी मौन सम्मति तो दी, पर अन्दर ही अन्दर उसका पराए दुःख से पीड़ित स्नेह कोमल हृदय उस बूढ़े के प्रति अश्रद्धा और उनके बेटे के प्रति ऊब में भर गया।

रासबिहारी दुनियादार ठहरे, यह बात उनको नाजानी न थी कि जो मालिक है, तक में उसे सोलहों आने शिकस्त देकर अदा करते वक्त आठ आने से ज्यादा का लोभ नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह लाभ अन्त तक टिकाऊ नहीं होता। लिहाजा उदारता दिखाकर लाभवान होने का अगर कोई मौका है, तो यही है। विजया की ओर देखकर बोले—बिटिया, चीज तुम्हारी है, तुम दान करोगी तो मैं क्यों अड़गा डालूँगा। मैं तो सिर्फ यह दिखाना चाह रहा था कि विलास जो करना चाह रहा था, वह न तो स्वार्थ के लिए, न क्रोध से ही, चाह रहा था कर्त्तव्य की खातिर। एक दिन मेरी जायदाद, तुम्हारे पिता की जायदाद—सब एक होकर तुम्हीं दोनों के हाथ लगेगी, उस दिन सुझाव देने के लिए इस बूढ़े को भी ढूँढ न पाओगी। उस दिन तुम दोनों में मतभेद न हो उस दिन अपने स्वामी के हर काम को जिसमें पक्का समझ कर श्रद्धा कर सको, विश्वास कर सको—मैंने सिर्फ यही चाहा है। वरना दान करना, दया करना, वह भी जानता है, मैं भी जानता हूँ लेकिन दान अपात्र को मिलने से नहीं चलने पर, मैं यही तुम्हारे सामने साबित करना चाहता था। अब समझी कि क्यों हम जगदीश के बेटे पर जरा भी दया नहीं करना चाहते, या वह दया क्यों

बिल्कुल असंभव है ? कह कर हँसते हुए बूढ़े ने विजया की ओर ताका। इस सार गर्भ और अकाट्य युक्ति मूलक उपदेश के खिलाफ दलील नहीं दी जा सकती—विजया चुप बैठी रही। रासबिहारी फिर बोले—अब समझ गई बिटिया, उम्र में छोटा होते हुए भी विलास भविष्य की कितनी दूर तक सोच कर काम करता है ? मैंने कहा न, मैंने तो इसी काम में अपना सर सफेद किया, लेकिन जमींदारी के मामले में उसकी चाल समझने में कभी-कभी मुझे दंग रह कर सोचना पड़ जाता है।

विजया ने सर हिलाकर हामी भरी, बोली नहीं।

साढ़े चार बज रहे हैं, कहते हुए रासबिहारी अपनी छड़ी लेकर उठे और बोले—इस समाज प्रतिष्ठा का फ़िक्र में विलास कितना उदग्रीव हो उठा है, यह शब्दों से जाहिर नहीं किया जा सकता। ज्ञान, ध्यान, धारण—इस समय उसका सब वही बन गया है। अब ईश्वर से अपनी सिर्फ यही बिनती है कि मैं वह शुभ दिन आँखों देखकर जाऊँ। यह कह कर उन्होंने हाथ जोड़े ब्रह्म को बार-बार नमस्कार किया। दरवाजे के पास जाकर ठिठक गये। कहा, छोकरा एक बार मेरे पास आता भी, तो न होता तो कुछ सोचने की कोशिश करता। वह भी तो कमी—बड़ा अभागा है! बड़ा अभागा देखता हूँ, बाप का स्वभाव सोलहों कला पाया है, कहते हुए चले गए।

उसी जगह, उसी तरह बैठकर विजया क्या जो सोचने लगी, ठिकाना नहीं अचानक बाहर नजर पड़ते ही ज्यों ही देखा कि बेला झुकने लगी है, त्यों ही नदी किनारे की अस्वास्थ्यकर हवा ने उसे खींचकर मानो उठा दिया और आज भी उस बूढ़े दरबान को साथ लेकर वह हवाखोरी के बहाने निकल पड़ी।

ठीक उसी जगह पर आज भी वह आदमी मछली पकड़ रहा था। कुछ दूर से ही विजया ने देखा लेकिन पास आकर वह इस तरह चली जाने लगी, मानो देखा ही नहीं। इतने में कन्हैयासिंह ने पीछे से आवाज दी, सलाम बाबूजी निवार मिला।

बात कानों तक पहुँची कि उसकी जड़ तक लाल हो उठी। जो लोग सोचते हैं कि वास्तविक मिताई के लिए काफी दिन और काफी बातचीत होनी जरूरी है, उन्हें यहाँ याद दिलाने की जरूरत है कि नहीं, यह जरूरी नहीं।

विजया मुडी कि उस आदमी ने वशी रख दी और नमस्कार करके पास आ खडा हुआ और हँसते हुए बोला, बेशक, देश के लिए आपको वास्तव म खिचाव है। और तो और देखता हू, उसका मलेरिया तक लिए बिना आपका चल नही रहा है।

विजया मुस्करा कर बोली, आप ले चुके शायद। लेकिन देखने से तो ऐसा नही लगता।

वह बोला—डाक्टर को जरा सब्र से लेना पडता है। ऐसी छीनाझपटी-

बात पूरी होने के पहले ही विजया ने पूछा—आप डाक्टर हैं? सहम कर वह सहसा जवाब न दे सका। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सम्भाल कर मजाक म कहा—और नहा तो क्या। एक कितने बडे डाक्टर के पडोसी हैं हम'। सबको दे दवा कर ही तो खुद—क्या ख्याल है?

विजया तुरन्त कुछ भी न बोली। जरा देर चुप रह कर फिर कहा, केवल पडोसी क्यों, वे तो आपके मित्र हैं, यह मैंने अन्दाज किया था। मेरी बातें उन्ह बताई हैं क्या?

वह हँस कर बोला—आप उन्हे एक निकम्मा और अभागा समझती है, यह तो पुरानी बात है, सभी कहते हैं। नए सिरे से इसे बताने की क्या जरूरत? लेकिन किसी दिन शायद वह आपसे मिलने जायेगे।

मन ही मन बेहद शर्मिदा होकर विजया बोली—मुझसे मिलने से उन्हे लाभ क्या होगा? मगर उनके बारे मे तो मैंने ऐसी बात आपसे नही कही है।

न भी कही है तो भी कहनी ही चाहिये थी।

आखिर क्यों?

जिसका घर द्वार बिक बिका जाय, उसे लोग अभागा ही कहते हैं। हम भी कहते हैं। सामने न कहे चाहे, पीठ पीछे तो कह ही सकते हैं।

विजया हँसने लगी। कहा, फिर तो आप उनके खूब दोस्त हैं।

वह गर्दन हिलाकर बोला—बजा फरमाती है आप। या उनकी तरफ से मैं ही आपसे आरजू मिन्नत करता, बशर्ते कि यह मालूम न होता कि आप अच्छे ही काम के लिए उनका मकान ले रही है।

विजया ने एक बार सिर उठा कर ताका भर, बोली नही।

बातें करते हुए आज वे और भी ज्यादा दूर निकल गए थे। नजर आया, कतार बांधे एक दल लोग नरेन बाबू के घर की ओर जा रहे हैं। उम्र मे पचास से लेकर पन्द्रह, सभी उम्र के लोग थे। उधर दिखाते हुए उस आदमी ने कहा—मालूम है, कहां जा रहे हैं ये लोग ? ये लोग जा रहे हैं नरेन बाबू के स्कूल में पढ़ने।

अचरज से विजया ने पूछा—यह व्यापार भी करते हैं वे ? लेकिन जहां तक मेरा ख्याल है, मुफ्त मे, है न ?

वह आदमी मुस्करा कर बोला—उंहूँ सही समझा आपने। निकम्मे लोग कही नहीं छिप सकते। फिर जरा गम्भीर होकर बोला, नरेन कहा करता है, अपने देश मे सच्चे किसान नहीं हैं। खेती मौरूसी पेशा है, इसीलिए खेत में दो बार हल जोत कर बीज छिड़क देते हैं और आसमान की ओर ही किए ताकते हुए बैठे रहते हैं। इसे खेती करना नहीं, लाटरी लगाना कहते हैं। किस जमीन मे कब खाद डालने की जरूरत है, खाद कहते किसे हैं, वास्तविक खेती क्या होती है—बिल्कुल नहीं जानते। विलायत मे डाक्टरी के साथ-साथ इस विद्या को भी उसने सीखा है। खैर, चलेंगी एक दिन उसका स्कूल देखने के लिए ? चलेंगी जहां बाप, बेटा, दादा एक साथ पाठशाला मे पढ़ते हैं।

विजया उसी घड़ी जाने को तैयार हो गई, लेकिन तुरन्त कौतूहल को दबाकर बोली—रहने दीजिये। पूछा—अच्छा, इतने बड़े मकान के रहते पेड़ तले पाठशाला क्यों लगाते हैं ?

उसने कहा—आखिर इस तरह की शिक्षा केवल पाठ रटा कर जबानी तो नहीं दी जाती। उन्हें हाथों-हाथ खेती करके सिखाई जाती है कि सीख कर वह भी इस काम को करने पर दुगुनी, यहां तक कि चार-पांच गुनी फसल हो सकती है। यह बतावे कि किस खेत चाहिए, खेती करके दिखाना चाहिये। कमर ठोक कर बादल की तरफ हाथ फैलाए बैठने से काम नहीं चल सकता। अब समझा आपने, उसकी पाठशाला पेड़ के नीचे क्यों लगती है ? कभी अगर उसकी पाठशाला की खेती आप देखें तो मैं अभी कह कर रख सकता हूँ, आपकी आँखें खुल जायेंगी। कभी तो समय है, आप ही चलिये न, पास ही तो है।

विजया के चेहरे का भाव धीरे धीरे गम्भीर और कठिन होता आ रहा था। बोली, न, आज रहने दीजिये।

उस आदमी ने आसानी से कहा—तो रहने दीजिए। चलिए, कुछ दूर तक आपको पहुचा आऊँ—और वह साथ चलने लगा। कोई पाँचेक मिनट विजया एक शब्द भी बोल न सकी, अन्दर ही अन्दर जाने उसे कैसी तो शम होने लगी, जो कि शम की वजह भी वह समझ नही सकी। वह आदमी फिर बोल उठा—उसका मकान जब आप धम के ही काम के लिए ले रही हैं, तो यह कै बीघा जमीन, जो अच्छे ही काम मे लग रही है, इसे तो आप सहज ही छोड दे सकती हैं? और वह धीमे-धीमे हँसने लगा।

जवाब मे विजया किन्तु गम्भीर होकर बोली—यह आग्रह करने के लिए उनकी तरफ से आपको कोई अधिकार है? और, कनखियो से उसने देखा, उस आदमी के मुस्कराते चेहरे का कोई व्यतिक्रम नही हुआ।

वह बोला—यह अधिकार देने पर निभर नही करता। लेने पर निर्भर करता है। जो भला काम है, उसका अधिकार मनुष्य साथ ही साथ भगवान से पा जाता है, किसी के आगे हाथ पसार कर नही लेना पडता। दया की जिस प्रायना पर आप भीतर से खीझ उठी, पता है, वह किसे मिलती? देश के भूखे किसानो को। हमारे शास्त्रो मे हैं, गरीब भगवान के एक विशेष रूप हैं। उनकी सेवा का अधिकार तो हर किसी को है। वह अधिकार मैं नरेन से क्यो माँगने लगा, भला? कहकर वह हँसने लगा।

चलते-चलते विजया बोली—मगर आपके दोस्त तो महज इसी काम के लिए यहा बैठे नही रह सकेंगे?

वह बोला—जी नहीं। मगर हो सकता है, वे यह भार मुझ पर सौंप जायें।

विजया के होठो पर एक दबी हँसी खेल रही। लेकिन गम्भीर होकर बोली, यह मैं समझ रही थी।

वह बोला—समझने की बात ही है। यह सब काम पहले देश के जमीदारो का था। उन्हे ब्रह्मोत्तर देना पडता था। अब वह जिम्मेदारी न इसीलिए जब कोई दो-चार बीघे झटक

लेन की कोशिश करता है, तो उन्हे पूर्व संस्कार के नाते पता चल जाता है। वह फिर हँसने लगा।

विजया खुद ही हँसना चाह रही थी, पर साथ न दे सकी। यह सहज मजाक जाने उसके जी मे कहा जाकर गड़ गया। जरा देर चुपचाप चलती रही, फिर पूछा, आप खुद भी तो अपने मित्र को पनाह दे सकते हैं?

लेकिन मैं तो यहा रहता नही। शायद एक हफ्ते के बाद ही चला जाऊँगा।

अन्दर से विजया चौक उठी मानो। बोली—लेकिन घर जब यहाँ है, तो आना-जाना तो लगा ही रहता होगा?

उस आदमी ने गर्दन हिलाकर कहा, नही, अब शायद मुझे यहाँ न आना पड़ेगा।

विजया का कलेजा मथने लगा। मन मे सोचा, खामखा इसके बारे मे ज्यादा पूछताछ करना किसी भी भाँति वाजिब न होगा लेकिन अपना कौतूहल वह हर्गिज न रोक सकी। हौले हौले बोली—यहा का भार लेने वाले जरूर कोई होगे, पर—

वह हँस कर बोला—नही, वैसा आदमी कोई नही है।

तो आपके माता पिता—

मेरे मा-बाप, भाई बहन, कोई नही। लीजिये, आपके घर तक आ गए। नमस्कार। मैं चलता हू। कह कर वह ठिठक गया।

विजया उसकी ओर ताक नही सकी, लेकिन धीमे से बोली—अन्दर नही चलेंगे?

नही। लौटने मे अँधेरा हो जायगा। नमस्कार।

हाथ उठाकर विजया ने प्रति नमस्कार किया और बड़े ही संकोच के साथ धीरे धीरे बोली—अपने दोस्त को जरा रासविहारी बाबू से मिल लेने को नहीं कह सकते?

उसने अचरज से कहा, क्या उनसे क्यो!

पिताजी की जगह-जायदाद सब वही देखते है न।

वह मैं जानता हूँ। लेकिन उनसे मिलने को क्यो कह रही हैं?

विजया इस सवाल का कोई जवाब न दे सकी। वह आदमी जरा देर थिर खडा रहकर शायद इन्तजार करता रहा। फिर बोला—लौटने मे मुझे रात हो जायगी, चलूँ। और वह तेजी से चला गया।

८

विजया के घर से लगा बगीचे का यह हिस्सा काफी लम्बा चौडा है। बडे-बडे आम कटहल के पेडो के नीचे उस समय अँधेरा गाढा होता आ रहा था। बूढे दरबान ने कहा, माँजी जरा घूम कर सदर रास्ते मे जाना ठीक न होता?

यह सब देखने-सुनने लायक मन की अवस्था उस समय विजया की न थी। वह सिर्फ मुख्तसर एक 'ना' कह कर अँधेरे बगीचे से होकर घर की तरफ बढ चली। जिन दो बातो ने उसके मन को सबसे ज्यादा उलझा रक्खा था, उनमे से एक यह कि इतनी बात चीत के बावजूद चूँकि नारी के नाते शोभन नहीं, इसीलिए उनका नाम तक पूछा न जा सका। दूसरी यह कि हफ्ते भर बाद ये कहाँ चले जायँगे, सौ बार जबान पर आ आ कर भी यह प्रश्न लज्जा के मारे जबान पर ही अटका रह गया। इनकी एक बात ने शुरू से ही विजया का ध्यान आकृष्ट किया था कि ये जो भी हो, हैं सुशिक्षित और पैदाइश चाहे गाँव की हो, दूसरी भद्र महिला से नि सकोच बोलने की शिक्षा और आदत इन्हें है। ब्राह्म समाज का न होते हुए भी यह शिक्षा उन्हे कहाँ मिली, सोचते हुए घर मे कदम रखते ही परेश की माँ ने आकर खबर दी बैठक मे बडी देर से विलास बाबू इन्तजार कर रहे हैं। सुनते ही उसका जी थकावट और ऊब से भर गया। वह उस दिन जो बिगड कर गया था, फिर नहीं आया था। लेकिन आज जिस वजह से भी आया हो चाहे, जिस आदमी की चिन्ता से उसका अन्त करण परिपूर्ण था उसका कुछ भी न जानते हुए भी, अचानक दोनों मे आसमान-जमीन का फर्क अनुभव किए बिना उससे न रहा गया।

थके-थके से स्वर म पूछा—मैं आ गयी, यह क्या उनसे कह दिया गया है परेश की मा ?

परेश की माँ बोली—जी नही दीदी जी, मैं तुरन्त परेश से खबर भिजवा देती हूँ।

उनसे चाय के लिए पूछा गया था ?

भला यह भी कहने की है ? उन्होंने तो कहा था, आप लौट आएँ, साथ ही पीयेंगे।

इस घर के भावी कर्ता धर्ता विलास बाबू ही हैं, यह बात अपने सगे किसी से छिपी न थी और उसी हिसाब से उनके आदर-जतन मे त्रुटि नही होती थी। विजया और कुछ न बोली, ऊपर अपने कमरे मे चली गई। लगभग बीस मिनट बाद नीचे आई। खुले दरवाजे से बाहर से ही उसे नजर आया, बत्ती के सामने झुककर विलास जाने क्या-क्या कागज-पत्तर देख रहा है। उसके पैरो की आहट पाकर उसने सिर उठाया, हलका-सा नमस्कार करके बिल्कुल गम्भीर हो गया। बोला—तुमने जरूर यही सोचा होगा कि मैं नाराज होकर इतने दिन से नही आया। नाराज तो कि मैं नही हुआ, लेकिन होता भी तो वह कतई गैरवाजिब न होता, यह तो तुम्हारे सामने आज साबित करूँगा।

विलास अब तक विजया को 'आप' कहा करता था। आज के इस आकस्मिक 'तुम' सबोधन का कोई कारण समझ न सकने के बावजूद वह आनन्द के मारे उमग नही उठी, यह उसकी शकल देखकर अनुमान करना कठिन न था। लेकिन वह कुछ बोली नही। धीरे-धीरे अ दर दाखिल हुई और एक चौकी खींच कर कुछ दूर पर बैठ गई। विलास ने इसका ख्याल तक न किया और बोला—सारा कुछ ठीक-ठाक कर-कराके मैं अभी-अभी कलकत्ते से आ रहा हूँ—बाबूजी से भी नही मिल सका हूँ। मुझे उत्तरदायित्व का ज्ञान है, माथे पर एक विराट काम लेकर मैं थिर नही रह सकता। अपने ब्रह्म-मन्दिर की स्थापना इसी बडे दिन के मौके से होगी—मैं सब तै कर आया। यहाँ तक कि न्योता तक बाकी न रक्खा। उफ, कल सुबह से किस कदर चक्कर काटना पडा है मुझे। खैर उधर से तो एक प्रकार से निश्चित हुआ। कौन-कौन

बाइऐ, इस कागज पर यह भी दर्ज कर लाया हूँ, पढ देखो, कह कर विलास आत्म-प्रसाद का गहरा निश्वास छोड कर सामने के कागज को विजया की तरफ खिसका कर कुर्सी पर पीछे की ओर झुक कर बैठ गया।

विजया फिर न बोली—आमन्त्रितों के बारे मे भी कोई उत्सुकता नहीं जाहिर की, जैसे बैठी थी, वैसे ही बैठी रही। अब विलास विजया की चुप्पी पर जरा सचेतन होकर बोला—माजरा क्या है ? ऐसी चुपचाप ?

विजया ने धीरे से कहा—आप लोगो को आमन्त्रित कर आये, मैं सोचती हूँ, अब उन्हें कहा क्या जाय ?

यानी ?

मन्दिर की प्रतिष्ठा के बारे मे मैं अभी कुछ तै नहीं कर पाई हू।

विलास तुरन्त तन कर बैठ गया और कुछ देर तीखी नजरो से देखकर कहा—मतलब ? तुमने क्या सोचा, इस छुट्टी मे अगर न बना तो जल्द हो पायगा फिर ? आखिर वे कुछ तुम्हारे थे तो नही कि तुम्ही जब सहूलियत होगी, तभी हाजिर हो जायेंगे ? तै नही कर पाई, मतलब क्या इसका ?

मारे गुस्से के उसकी आँखें जैसे जलने लगी। विजया कुछ देर नजर झुकाये चुप बैठी रही, फिर धीमे-धीमे बोली—मैंने सोच कर देखा, यहा इसके लिए धूम-धाम करने की जरूरत नही।

अपनी दोनो आखें फाड कर विलास बोला—धूम-धाम। धूमधाम करनी होगी, मैंने ऐसा तो नही कहा। बल्कि जो स्वभावत शान्त है, गम्भीर है—उसका काम चुपचाप करने की अक्ल मुझे है। तुम्हे इसके लिए फिक्र नही करनी होगी।

विजया वैसे ही मृदु स्वर मे बोली—यहाँ ब्राह्म-मन्दिर प्रतिष्ठा करने की कोई सार्थकता नही। वह नही होगा।

विलास पहले तो ऐसा काठ का मारा-सा रह गया कि उसके मुँह से बात ही न फूटी। उसके बाद बोला—मैं जानना चाहता हू, तुम वास्तव मे ब्राह्म महिला हो या नही।

इस करारी चोट से चौंक कर विजया ने सिर उठा कर देखा, लेकिन पलक मारते भर मे अपने को सयत करके केवल यह कहा—आप घर से शांत

होकर आएँ, फिर बातें होंगी। अभी रहने दें। वह घर-वह-उठने जा रही थी कि देखा, नौकर चाय का सामान लिए आ रहा है। सो वह बैठ गई। विलास ने यह सब नहीं देखा। ब्राह्म समाज की होने के बावजूद उसने अपने-व्यवहार को संयत या भद्र बनाना नहीं सीखा—वह नौकर के सामने चीख उठा, तुम्हारा समाज कतई छोड़ दे सकते हैं, जानती हो?

विजया चुपचाप चाय तैयार करने लगी, जवाब न दिया। नौकर चला गया, तो धीरे से बोली—इसके बारे में मैं चाचा जी से बात करूँगी, आपसे नहीं।—उसने चाय का प्याला उसकी ओर बढ़ा दिया।

प्याले को विलास ने छुआ नहीं। उसने उसी बात को दुहराया—हम तुम्हारा समाज छोड़ दें तो क्या होगा, मालूम है?

विजया ने कहा—नहीं लेकिन चाहे जो हो, आपको जिम्मेदारी का जब इतना ज्यादा ख्याल है, तो मेरी इच्छा के विरुद्ध जिन लोगों को आमन्त्रित करके अपमानित करने की जिम्मेदारी ली है, उनका बोझ खुद ही ढोएँ, मुझे हाथ बँटाने का आग्रह न करें।

दोनों आँखें लहका कर विलास बोला—मैं काम का आदमी हूँ, काम को ही प्यार करता हूँ, खेल पसन्द नहीं करता—यह याद रखना।

विजया स्वाभाविक शान्त स्वर में बोली—अच्छा, यह मैं न भूलूँगी।

इस कहने में जो श्लेष था, उसने विलासबिहारी को एक बारगी उन्मत्त कर दिया। वह लगभग चीख उठा, अच्छा, जिसमें न भूलो, यह मैं देखूँगा।

विजया बोली नहीं। चाय के प्याले में चम्मच डालकर हिलाने लगी। उसे चुप देख जरा देर खुद भी मौन रहकर विलास ने अपने को थोड़ा बहुत संयत करके कहा- अच्छा, इतना बड़ा मकान फिर और किस काम आयगा, सुनूँ मैं? उसे यों ही डाले तो नहीं रक्खा जा सकता।

अब की विजया ने नजर उठाकर देखा और अडिग-सी बोली—नहीं। अगर उस मकान को दखल करना ही पड़ेगा, यह तो अभी तक तै नहीं पाया है।

जवाब सुनकर विलास मारे गुस्से के जामे से बाहर हो गया। जमीन पर जोरों से पैर पीट कर चीखते हुए कहा,-तै पाया है, हजार बार तै पाया-

है। मैं समाज के सम्मानित व्यक्तियों को बुला कर उनका अपमान नही कर सकता, वह मकान हमें चाहिये ही। इसे मैं करके ही रहूँगा, कहे देता हू और जवाब का इन्तजार बिना किये ही तेजी से बाहर हो गया।

उसी दिन से विजया के मन के अन्दर हर पल यह आशा तृष्णा-सी जाग रही थी कि जाने के पहले यह अजाना भला आदमी कम से कम एक बार तो अपने दोस्त को साथ लेकर जरूर ही अनुरोध करने आएगे। दोनो मे जो भी बातें हुई थीं, सब उसके अन्तर में गड गई थी, एक शब्द भी उसका वह भूली न थी। उन सारी बातो को रात-दिन मन मे उलट-पलट कर उसने देखा था, कि वास्तव मे उसने ऐसी एक बात भी नही कही, जिसमे उन्हे यह धारणा हो कि उनके मित्र को उससे कोई उम्मीद करने की गुजाइश नही। बल्कि खूब याद आता है कि उसने यह भी जिक्र किया है नरेन उसके पिता के मित्र का लडका है, मुहलत मिले तो भी वह कर्ज चुका पायगा या नही—यह भी पूछा है, फिर जिसका सवस जा रहा हो, उसके लिए क्या इस पर भी कोशिश करने लायक कुछ न था। जहा कोई भी उम्मीद नही होती, वहा भी तो अपने बिराने एक बार जतन कर देखने को कहते हैं। उनके यह मित्र क्या दुनियाँ से बाहर ही हैं।

नदी के किनारे फिर भेंट नही हुई। लेकिन रोज वह सुबह से शाम तक यही आशा लिए रहती कि एक न एक बार वे आए होगे। परन्तु दिन बीतते गए, न वे आए, न आये, उनके वे डाक्टर मित्र।

रासबिहारी से भेंट हुई—तो उन्होने इस बात की बू तक न लगने दी कि इस बीच उन्ह अपने बेटे से कोई बात हुई है। बल्कि इशारे से वे यही जाहिर करते रहे कि सकल्प लगभग पूरा हो चला है। इस पर कोई हलचल हो सकती है, यह मानो उनके मन मे आ ही नही सकता। विजया झिझक से खुद यह बात न उठा सकी। अगहन बीत गया। पूस के पहिले ही दिन बाप-बेटे एक साथ पधारे। रासबिहारी ने कहा—दिन तो अब ज्यादा रहे नही बिटिया, इसी बीच तो सारा कुछ कर करा लेना होगा।

विजया सचमुच ही कुछ विस्मित होकर बोली—जब तक वे अपने आप चले नहीं जाते, तब तक तो कुछ हो नहीं सकता।

विलासविहारी होंठ दबा कर जरा हँसा। रासबिहारी बोले—तुम कह किसकी रही हो बिटिया, जगदीश के बेटे की? उसने तो कल ही मकान छोड़ दिया।

इस बात ने विजया के कलेजे के अन्दर तक जाकर चोट की। वह तुरन्त विलास की ओर से इस तरह पलट कर खड़ी हो गई, जिसमे किसी भी तरह उसकी शक्ल न देख सके। इस ढंग से कुछ क्षण नीरव रहकर चोट को सम्भाल कर उसने धीरे से रासबिहारी से पूछा, उनके सरोसामान क्या हुए? ले गये सब?

पीछे से ताना देने के ढंग से विलास ने कहा—सामान कहने को एक सिपाई खाट थी—शायद उसी पर सोते होंगे, मैने उसे निकलवा कर पेड़ के नीचे डलवा दिया है, चाहे तो ले जा सकते हैं, कोई ऐतराज नही।

विजया चुप हो रही, लेकिन उसके चेहरे पर वेदना के चिन्ह साफ दिखाई दे गये। यह देखकर बेटे की लिहाड़ी लेते हुए रासबिहारी ने कहा, यह तुम्हारी भूल है विलास। आदमी चाहे जैसा भी अपराधी हो, भगवान उसे जितनी चाहे सजा दें, उसके दुःख से दुखी होना, उसके प्रति समवेदना प्रकट करना उचित है। यह मैं नहीं कहता कि मन मे तुम्हे इसकी तकलीफ नहीं हो रही है, परन्तु उसे बाहर भी प्रकट करना चाहिये। जगदीश के लड़के से तुम्हारी मुलाकात हुई थी? उसे एक बार मुझ से मिलने को क्यों नहीं कहा? देखता मैं अगर कुछ—

पिता की बात खत्म भी न हो पाई—बेटा इनके इशारे को कतई बेकार करके मुँह से अजीब आवाज करते हुए कह उठा—उनसे भेंट करके न्योता करने के सिवाय मानो मुझे काम ही न था। आप भी क्या कहते हैं पिता जी, समझ नही आता। फिर मेरे वहाँ पहुँचने के पहले ही तो डाक्टर साहब अपना बोरिया-बसना कल-पुर्जा बटोर कर खिसक पड़े थे। विलायत में डाक्टर नकम्मा, हमुबग कहीं का। जाने और क्या सब कहने जा रहा था वह, पर कनखियों से विजया की ओर ताक कर रासबिहारी ने डांट बताई—नही-नही विलास, तुम्हारी इस तरह की बात चीत को मैं माफ नही कर सकता। अपने व्यवहार से तुम्हे शर्मिदा होना चाहिये, पछतावा करना चाहिये।

लेकिन जरा भी लज्जित या अनुतप्त न होकर विलास ने उत्तर दिया, "आखिर किस लिए, सुनूँ ? पराये दुःख से दुःखी होने, दूसरों का कष्ट दूर करने का पाठ मैंने पढ़ा है, लेकिन जो घमण्डी आदमी घर चढ़ कर अपमान कर जाता है, उसे मैं माफ नहीं करता। ऐसा ढोंग मुझमें नहीं है।

उसके जवाब से दोनों सन्न रह गये। रासबिहारी बोले—घर चढ़ कर तुम्हारा कौन अपमान कर गया ? किसको कह रहे हो ?

चौंक कर विजया ने उधर देखा, विलास उसी से कह उठा—अपने को पूर्ण बाबू का भाजा बता कर जो तुम्हारा तक अपमान कर गया, वह कौन था ? उस समय तो उसे बड़ी तरह दी तुमने। वही नरेन था उस समय अपना सच्चा परिचय देने का साहस करता तो मैं समझता कि वह मर्द है। ढोंगी कहीं का ! और दोनों ने अचरज के साथ देखा कि विजया का सारा मुख-मंडल पल मे वेदना से नीरस और फीका पड़ गया है।

६

बड़े दिन की छुट्टियाँ करीब थीं, सो जगदीश के मकान का कुछ [illegible] के लिए और दूसरे-दूसरे कमरे कलकत्ते से आने वाले मानवीय अति-थियों के लिए सजाये जा रहे थे। खुद विलासविहारी इसकी देख-रेख कर रहे हैं। साधारण निमन्त्रितों की तादाद कम न थी जो विलास के मित्र थे, तै हुआ था कि वे रासबिहारी के यहाँ और बाकी लोग विजया के यहाँ टिकेंगे। महिलायें जो आयेंगी वे भी यहीं उतरेंगी। बन्दोबस्त भी ऐसा ही हुआ था।

उस दिन सुबह नहा कर विजया नीचे की बैठक में आई कि देखा, बाहर के एक ओर बूढ़ा परेश खोमचे से मुरमुरा निकाल कर चबा रहा है और एक हाथ से रस्सी में बँधी हुई गैया की गर्दन सहला कर अनिर्वचनीय आनन्द पा रहा है। गैया भी आँखें बन्द किये गर्दन उठाये उस अपने की सेवा ले रही है।

इन दो विलासीय जीवों के सौजन्य से उसकी नजर भी अभी हुई बेजार

का क्या संयोग था, कहना कठिन है, लेकिन यह देखते हुए अजानते ही उसकी दोनों आँखें आँसुओं से भर उठीं। यह लड़का उसका बड़ा ही फरमाबरदार था। आँखें पोंछ कर उसने उसे बुलाया और कौतुक भरे नेह से पूछा—हाँ रे परेश, तेरी मा ने तुझे यही कपड़ा खरीद दिया है? छि—यह भी कोई कोर है?

परेश ने गर्दन आड़ी करके कनखियों से विजया के कपड़े की खूबसूरत चौड़ी कोर से अपनी धोती की कोर को मिलाया और बड़ा क्षुब्ध हो उठा। उसके मन को ताड़कर विजया अपने कपड़े की कोर दिखाती हुई बोली—भला ऐसी कोर न हो तो तुझे क्या फब? है न?

परेश ने तुरन्त हामी भर कर कहा—माँ कुछ भी खरीदना नहीं जानती।

विजया बोली—मैं लेकिन तुझे एक ऐसा कपड़ा खरीद दे सकती हूं अगर तू—

मगर इस अगर की परेश को कोई जरूरत न थी। वह सलज्ज हँसी से मुँह का कान तक फैला कर बोला—कब दोगी?

दूँगी, अगर तू मेरा कहना सुन।

क्या, कहा!

विजया कुछ सोच कर बोली लेकिन तेरी माँ या और कोई सुनेगा, तो तुझे पहनने न देगा।

इसके लिए कोई रुकावट मानने लायक मन की अवस्था परेश को न थी।

वह सिर हिलाकर बोला—मा कैसे जानेगी? तुम कहो तो सही, मैं तुरन्त सुनूँगा।

विजया ने कहा—तू दिघड़ा गाव जानता है।

हाथ उठा कर परेश ने कहा—यह—वहाँ तवार का कोला लाने बहुत बार जाता हूँ।

विजया ने पूछा—वहाँ सबसे बड़ा घर किसका है, जानता है तू? परेश बोला—हि बाम्हनों का है। वहीं पिछले साल जो ताड़ी पोखर में छत से गिर पड़ा था यही, जैसे यहाँ पर गोविन्द की मुरमुरा बताशे की दुकान। और वहाँ पर

उनका मकान। गोविन्द क्या कहता है, पता है मां जी ? कहता है, धेले का अब ढाई गंडा नही मिलेगा, अब कुल दो गंडा। मगर तुम अगर पूरे पैसे का लाने कहा मां जी तो मैं साढ़े पांच गंडा ले आ सकता हू।

विजया ने कहा—दो पैसे के बताशे ला सकेगा तू ?

परेश बोला—हिं—इस हाथ मे एक पैसे का साढ़े पाच गंडा लेकर कहूगा, भई, इस हाथ मे और साढ़े पाच गंडा गिन दो। अब लेकर कहूंगा, माँ जी ने कहा है, दो बताशा साव—न ? लेकर तब उसे पैसे दूंगा—न ?

विजया ने हँस कर कहा—हां, तब पैसे देना। और उसी बड़ी दूकान वाले से पूछ लेना कि उस बड़े मकान में जो नरेन बाबू रहता था, वह कहाँ गया। पूछना, वह जहा रहता है, तुम वह घर मुझे चिन्ह दो। हारे, पूछ तो सकेगा तू ?

सिर हिलाकर परेश बोला—हिं अच्छा, दो पैसे, दौड कर ले आऊं।

और मैंने जो पूछने को कहा ?

परेश बोला—हिं—वह भी।

हाथ मे बताशा पाकर भूल तो न जायगा ?

हाथ बढ़ा कर परेश ने कहा—तुम पैसे तो दो। मै भागकर जाऊं और तेरी मा पूछे कि कहा गया था तो क्या कहेगा ?

परेश पक्के बुद्धिमान की तरह हँसकर बोला—वह मैं मजे मे बता दूंगा। बताशे का ठागा कपडे मे छिपा कर कह दूंगा, मा जी ने भेजा था—वह वहां ब्राह्मणा के यहां नरेन बाबू का पता खोजने गया था। पैसा तो दो जल्दी तुम। विजया हँस पड़ी। कहा—तू कैसा बेवकूफ लडका है रे परेश, मा से भी कोई झूठ बोलता है ? गया था बताशा खरीदने, पूछने पर यही बताना। मगर जो मैंने कहा, वह जरूर पूछकर आना। नही है तो कपडा नही मिलेगा, कह देती हूँ मैं।

अच्छा कह कर परेश पैसा लेकर दौड पड़ा। विजया सूनी आखों उस ओर ताकती हुई चुपचाप खड़ी रही। जिस सम्वाद को जानने मे कौतूहल मे जरा भी अस्वाभाविकता नही, जिसे वह जिस किसी को भी भेजकर बहुत पहले मजे मे जान सकती थी, वही आज उसके लिए सकोच का ऐसा विषय क्यो बन

गया है, अगर डूब कर इसे देखती तो इस लुकाछिपी के शर्म से खुद ही मर जाती। लेकिन यह शर्म अनजानते ही उसकी चिन्ता धारा में मिलकर एकाकार हो गई थी, लिहाजा उसे अलग देखने की दृष्टि कभी उसकी आँखों में थी, आज वह भी उसे याद नहीं आया।

कुछ चिट्ठियाँ लिखनी थीं। समय काटने के ख्याल से विजया कागज कलम लेकर मेज पर जा बैठी। लेकिन बातें कुछ ऐसी बिखरी-बिखरी, बे-सिर पैर की आने लगी कि कुछ पन्ने फाड़ कर उसे कलम रख देनी पड़ी। परेश का पता नहीं। मन की चंचलता को दबा न पाकर वह छत पर जाकर उसकी राह देखने लगी। बड़ी देर के बाद नजर आया, परेश नदी के किनारे-किनारे तेजी से चला आ रहा है। विजया कांपता हुआ हृदय और शंकित मन लिए उतर कर बैठक मे पहुची। उसके जाते ही परेश बताशों को आँचल मे छिपाए पैर दबा कर उसके पास आया और फैला कर दिखाते हुए बोला—दो पैसे के बारह अंडे लाया हू माँ जी।

धड़कते दिल से विजया ने पूछा—और दुकान वाले ने क्या कहा?

परेश फुसफुसा कर बोला—उसने मना किया कि पैसे मे छ गड़े की बात जिसमे किसी को न बतायें। कहता क्या था जानती हो।

विजया ने टोक कर कहा—और उस नरेन के बारे में—

परेश बोला—वह वहा नहीं है—जाने कहाँ चला गया। गोविन्द कहता क्या था जानती हो मा जी, बारह गड़े मे—

विजया बेहद खीझ उठी। रुखाई से बोली—ले जा अपना बारह गडा बताशा मेरे सामने से। कह कर खिड़की के पास जाकर बाहर की तरफ ताकने लगी।

इस मनमोह रूखे व्यवहार से वह लड़का बेचारा इतना-सा हो गया। वह भागता गया और भागकर आया, ग्यारह गड़े के बजाय चालाकी से बारह गंडे का सौदा पटा कर लाया, फिर भी मा जी को खुश न कर सका—यह सोचकर उसके दुःख की सीमा न रही। ढेंगे को हाथ में लिए मुँह सुखा कर वह बोला—इससे ज्यादा तो देता ही नहीं माँ जी!

विजया ने जवाब न दिया। लेकिन, उत्तर देने बिना ही वह उसकी व्यथा

का अनुभव कर रही थी। इसलिए तुरन्त सदस्य स्वर मे बोली—परेश, इसे ले जा, खा तू।

परेश ने डरते हुए पूछा—सब ?

मुँह फेर कर विजया बोली—हाँ, सब। मुझे इसकी जरूरत नही।

परेश समझ गया, वह नाराजगी की बात है। कुछ देर वह चुप खडा रहा। कपडे का बात याद आते ही उसे और एक बात याद आई। धीरे धीरे कहा, भट्टाचारज जी से पूँछ आऊँ माँ जी ?

कौन भट्टाचारज जी ? क्या पूछ—उत्सुकता से इतना ही पूछ पाकर विजया मुह फेर कर चुप हो गई। मुँह की बाकी बात मुँह मे ही रह गई बाहर न निकल सकी। अकस्मात आखो के आगे बरामदे पर नरेन दिखाई पडा—और दूसरे ही क्षण अन्दर दाखिल होते हुए हाथ उठाकर उसने विजया को नमस्कार किया।

परेश न कहा—नरेन्दर बाबू कहाँ गये हैं —यह—

विजया को जवाब मे नमस्ते तक करने का मौका न मिला, मारे शर्म के मारा चेहरा सुर्ख करके हडबड मे बोल उठी—जा-जा अब पूछने की जरूरत नहीं।

परेश ने समझा, यह भी नाराजगी की बात है। दुखी होकर बोला—काना भट्टाचारज जी तो उन्ही के पडोस मे रहते हैं माँ जी। गोविन्द न तो बताया—

विजया फीकी हँसी हँसकर बोली—आइए, आइए। बैठिए। और परेश से कहा, तू अभी जा ता परेश, कौन-सी बडी बात है कि न होगा और किसी दिन पूछ आना। अभी जा।

परेश के चले जाने के बाद नरेन ने पूछा—आप नरेन बाबू के बारे मे जानना चाहती हैं ? वे कहाँ गये है, यह ?

'ना' कह पाता तो जो जाती विजया, लेकिन झूठ बोलने की उसे आदत न थी। किसी कदर अन्दर की शर्म को पीकर वह बोली—हाँ। लेकिन वह फिर कभी मालूम होने से भी चल जायगा।

नरेन ने पूछा—क्यो ? काम है कोई ?

यह सवाल विजया के कानों ठीक व्यंग-सा लगा। बोली, क्यों, बिना जरूरत के कोई किसी के बारे में जानना नहीं चाहता ?

कौन क्या करता है नहीं करता है, इसको छोड़िए। लेकिन आपका तो उनसे सारा सरोकार चुक गया है, फिर क्यों उनकी खोज कर रही हैं ? कर्ज क्या पूरा अदा नहीं हुआ ?

विजया के चेहरे पर पीड़ा झलक आई, लेकिन उसने जवाब नहीं दिया। खुद नरेन भी अपने अंदर के आवेग को पूरी तरह छिपा न सका। बोला—थोड़ा-बहुत अगर अभी रहा गया हो, तो भी जहाँ तक मैं जानता हूं, उसके पास अब ऐसी कोई चीज बाकी नहीं, जिससे बाकी कर्ज अदा हो सके। अब उनकी खोज करना—

आपसे यह किसने कहा कि मैं कर्ज के लिए ही उन्हें खोज रही हूँ ? इसके सिवाय और क्या हो सकता है, मैं तो सोच नहीं सकता। वे भी आपको नहीं पहचानते, आप भी उन्हें नहीं पहचानतीं।

वे भी मुझे पहचानते हैं, मैं भी उन्हें पहचानती हूं।

नरेन हँसा बोला, वे आपको पहचानते हैं, यह सही है, लेकिन आप उन्हें नहीं पहचानतीं। मान लीजिये, मैं ही कहूं मैं नरेन हूं, तो भी तो आप—

विजया ने सिर हिला कर कहा—तो मैं विश्वास करूंगी और कहूंगी कि यह सच्ची बात बहुत पहले ही आपके मुंह से निकलनी चाहिए थी।

फूंक मार कर बत्ती गुल कर देने से कमरे की जो हालत होती है, विजया के इस जवाब से पल भर में नरेन का चेहरा वैसा ही मलीन हो गया। यह देखकर ही विजया फिर से बोली—दूसरे परिचय से अपनी आलोचना सुनना और छिपकर सुनना दोनों क्या आपको एक ही नहीं लगता ? मुझे तो लगता है। लेकिन बात यों है कि हम ब्राह्म हैं, यही जो कह लें।

नरेन का मन मलीन मुखड़ा अब लज्जा से बिल्कुल स्याह हो गया। जरा देर चुप रहकर बोला—आपसे जितनी बातें हुईं, उनमें अपनी आलोचना भी थी मगर उसमें बुरा कोई नीयत तो न थी। सोचा था, आखिरी दिन परिचय दूंगा, मगर न बन पड़ा। इससे आपका कोई नुकसान हुआ ?

यह सवाल शुरू ही मे पूछा जाना, तो वेशक इधर से भी जवाब देना सख्त होता। लेकिन जो आलोचना एक बार शुरू हो चुकी है, वह अपने झोंक मे आप ही बहुत-सी कठिन जगहो को तड़प जाती है। इसीलिए विजया सहज ही जवाब दे सकी। बोली, नुक्सान तो किसी का बहुत तरह से हो सकता है और अगर हुआ भी तो हो ही चुका, अब तो आप उसका कोई उपाय नही कर सकते। खैर। खास आपके बारे मे कुछ जानना चाहू, तो क्या—

नाराज हूगा ? नही। कहते ही तुरन्त प्रशान्त खिली हँसी से उसका मुखड़ा उज्ज्वल हो उठा। इतना बातचीत होने के बावजूद अब तक विजया जिस आदमी का परिचय नही पा सकी थी, यह क्षण भर की हँसी उस आदमी की वह खबर दे गई। उसे लगा इस आदमी का बाहर-भीतर एक बारगी स्फटिक की नाई स्वच्छ है। जिसने सब कुछ ले लिया, और यह उससे भी अविदित नही, इसलिए शायद वह आखें उठाकर पूछ भी नही सकी, नजर नीची किए पूछा—आप इस समय हैं कहा ?

नरेन बोला—दूर के रिश्ते की मेरी एक फूफी अभी जिन्दा है, उन्ही के यहाँ हू।

आप पर जो जो सामाजिक बन्धन है, यह क्या उस गाव के लोग नही जानते ?

क्यो नही ?

फिर ?

नरेन जरा सोच कर बोला—मैं जिस कमरे मे हू, उसे ठीक घर म नही कहा जा सकता है, और शायद मेरी लाचारी जानकर भी कुछ दिन के लिए उनके लड़को को एतराज नही है। लेकिन इतना जरूर है ज्यादा दिनो के लिए उन्हे तग नही किया जा सकता। नरेन जरा रुका। अच्छा सच सच बताएँ, इन बातो की खोज पूछ क्यो कर रही थी आप ? पिताजी के नाम और कुछ कर्ज निकला है, है न ?

उत्तर देने के लिए ही शायद विजया ने सिर उठाया। मगर अचानक कोई भी बात उसके मुँह से नही निकली।

नरेन बोला—बाप का कर्ज कौन नही चुकाना चाहता, लेकिन आप से सच कहता हू मैं नाम से या बेनामी ऐसी कोई चीज अपने पल्ले नही, जो बच कर दे सकूँ। केवल एक माइक्रोसकोप ही है—और उसी को बेचकर मुझे बर्मा लौटने का खर्च जुटाना होगा। फूफी की भी हालत अच्छी नही, यहा तक कि खाना पीना भी—इतना कहकर वह थम गया।

विजया की आखो म आसू भर आये। उसने गर्दन फेर ली। नरेन बोला—हा, अगर आप ऐसी कृपा कर सकें तो पिता जी का कर्ज मैं अपने नाम लिख दे सकता हू। बाद मे चुकाने की भरसक चेष्टा करूँगा। आप रासबिहारी बाबू को कह दें तो वे इसके लिए इस समय मुझे नही सतायेंगे।

परेश ने आकर दरवाजे के बाहर से कहा—मा जी ने कहा बडी देर हो गई महाराज से खाना देने को कह ?

सामने की घडी देख कर नरेन चौंक कर खडा हो गया, शर्मा कर बोला—हुस! बारह बज गये! बडी तकलीफ हुई आपको।

विजया ने आसू जब्त कर लिए थे। बोली, आपने यह तो कहा ही नही कि आप किस लिये आये थे ?

नरेन झटपट बोल उठा। वह रहने दीजिये। और वह जाने को तैयार हो गया कि विजया ने पूछा—आपकी फूफी का घर यहाँ से कितनी दूर है ? अभी वही जाना होगा न ?

नरेन बोला, हा। दूर तो है—कोई दो कोस।

विजया अवाक होकर बोला—इस धूप म आप दो कोस पैदल जायेंगे ? जाने ही म तो तीन बज जायेंगे!

सो तो नमस्कार! कहकर नरेन ने कदम बढाया कि विजया झपट कर किवाड के सामने जा खडी हुई, कहा, मेरा एक अनुरोध आपको रखना ही पडेगा। इतनी देर हो गई, बिना खाए आप नही जा सकते।

नरेन हैरान होकर बोला—खाकर जाऊँगा! यहाँ ?

क्यो, आपकी भी जात जायगी क्या ?

उत्तर म फिर उसी तरह प्रशान्त हँसी से उसका चेहरा खिल पडा, बोला—नही, दुनिया म अब यह डर मुझे नही रहा। उसके सिवा, भगवान आज

मुझ पर बहुत प्रसन्न हैं, वरना इतनी कुवेला मे वहाँ क्या नसीब होता, वह तो मैं जानता हू ।

तो आप जरा बठें, मैं आई, कहकर उसकी ओर देखे बिना ही विजया कमर से बाहर हो गई ।

११

खाना लगभग खत्म हो आया तो नरेन ने फिर वही कहा, इतनी देर तक खुद बिना खाये मुझे सामने बिठाकर खिलाने की कोई जरूरत न थी । किसी मुल्क मे ऐसा रवाज नही है ।

विजया ने मुस्कराते हुए जवाब दिया—पिताजी कहते थे, उस देश की बदनसीबी समझो, जहाँ की औरतें अपने उपासी रहकर पुरुषो को नही खिला पाती । उन्हें साथ बैठकर खाना पडता है । मैं भी यही कहती हू ।

नरेन बोला—क्यो ऐसा कहती है ? और देशों की बात न हो छोड भी दें, लेकिन अपने यहाँ भी तो बहुतों के घर खाया है, मैंने देखा है, उनके यहाँ प्रथा चलती है ।

विजया बोली, जिन्होने विलायती रवाज अपनाया है, उनके यहा चलता होगा, सबके यहाँ नही । आप चूँकि खुद बहुत दिना तक विदेश म रहे, इसलिए आपको भूल हो रही है । वरना मर्दों के सामने निकलती हैं, जरूरत पर बात भी करती है इसलिए हम सब मेम साहब हो नहीं है, उनका चाल चलन भी नहीं चलती ।

नरेन ने कहा—न चलती हैं, यह और बात है, चलना तो चाहिये । जिनको जो बात अच्छी है, उनसे उसे तो लेना चाहिये ।

विजया बोली, अच्छी कौन सी बात, साथ बैठकर खाना ? और वह जरा हँसी । कहा, आपको क्या मालूम कि इस विलायत पर औरतो का कितना बडा जोर होता है ? मैं तो अपने बहुत मे अधिकारियों को छोड दने को तैयार

हू लेकिन यह नही—अरे, दूध तो सब पडा ही रह गया। न-न, सिर हिलाने से न चलेगा। हर्गिज आपका पेट नही भरा है मैं कहती हू।

नरेन ने हँसकर कहा—मेरा अपना पेटा भरा या नही, यह भी आप कह देगी! बडी अजीब बात! और वह उठ खडा हुआ। सुनकर विजया खुद भी जरा हँसी जरूर, लेकिन उसके चेहरे के भाव से यह समझना बाकी न रहा कि उतना सा दूध न पीने की वजह से वह क्षुब्ध हुई है।

वेला झुक आई और रुखसत होते वक्त नरेन अचानक बोल उठा—एक बात से आज मुझे बडा अचरज हुआ आपने धूप मे मुझे जाने न दिया, बिना खिलाये न छोडा, थोडा कम खाया, इससे क्षुब्ध हुई—यह सब मुमकिन कैसे हुआ? आप दुखी न हो, श्लेष या व्यग करने की नीयत से नही कह रहा मैं—पर मैं उसी वक्त से यह सोच रहा हूँ कि यह सम्भव कैसे होता?

इस चर्चा से किसी भाति पिंड छूटे, विजया बाधा देती हुई झट बोल उठी—हर घर मे यही होता है। खैर, उसे छोडिए। आप अब कब बर्मा जाना चाहते है।

नरेन अनमना बोला—परसो। लेकिन मैं तो आपका विराना हू, मेरे दु ख कष्ट से वास्तव मे आपका कुछ जाता-आता नही। फिर भी आपके अचारण से बाहर के किसी को यह कहने की मजाल नही कि मैं आपका कोई नही हू। कही मैं कम खाऊँ, या खाने मे कोई त्रुटि हो, इस डर से आप बिना खाये सामने बैठी रही। मेरे बहन नही, मा भी छुटपन मे चल बसी। वे जिंदा रही होती तो ऐसी व्याकुल होती या नही, नही मालूम, लेकिन आपका जतन देखकर मैं दग रह गया हू। यह सब वास्तव मे सत्य नही हो सकता, इसे मैं भी समझता हू आप भी समझती है, बल्कि इसे सच ही कहू तो आपका मजाक बनाना होगा—लेकिन झूठा सोचने को भी जी नही चाहता।

विजया खिडकी के बाहर देख रही थी, उसी तरफ ताकते हुए कहा—भल मनसाहत नाम की एक चीज होती है, और कही नही देखी क्या आपने?

भलमनसाहत? वही हो शायद? उसके एक निश्वास निकल पडा। उसके बाद हाथ उठाकर फिर एक बार नमस्ते करता हुआ बोला—जैसे भी हो, पिता जी का सारा कर्जा अदा हो गया, यही मेरी सबसे बडी तृप्ति है। आपके

मन्दिर की दिन दिन श्री वृद्धि हो—आज का यह दिन मुझे सदा याद रहेगा। मैं चला। कह कर वह जब निकल पड़ा तो भीतर से अस्फुट सी आवाज आई—जरा सुनिये—

नरेन लौट पड़ा। विजया ने पूछा—आपके माइक्रोसकोप का दाम क्या है?

नरेन बोला—खरीदने म मुझे पाच सौ रुपये से ज्यादा लग गये थे—अभी ढाई सौ, दो सौ तक भी मिले तो दे दूंगा। कोई लेने वाला है आपके जानते? बिल्कुल नया ही है समझिये।

बेचन का ऐसा आग्रह देखकर मन ही मन बहुत पीड़ित होकर विजया ने पूछा—इतनी कम कीमत पर दे देंगे? उसका सब काम हो गया आपका?

नरेन न उसांस भर कर कहा—काम? कुछ भी नही हुआ। उसकी यह उसास विजया के अगोचर न रही। कुछ देर चुप रह कर उसने कहा—बहुत दिनो से मुझे ही एक खरीदने की ख्वाहिश है, अब तक खरीद नही पाई। कल मुझे दिखा सकते है आप?

क्यो नही? मैं आपको सब दिखा-समझा दूंगा।

कुछ सोच कर फिर बोला ठोक-बजाकर देखने का समय तो नही रहा, मगर मैं निश्चित कह सकता हू, लेने से आप ठगायेंगी नही।

फिर जरा चुप रहा और कहा—रुपये मे उसकी कीमत नही हो सकती—ऐसी चीज है। चू कि मेरे लिए दूसरा कोई चारा नही, इसीलिए नही तो—अच्छा, कल दोपहर को ले आऊंगा।

वह चला गया। जब तक नजर आता रहा, विजया अपलक आंखों उधर देखती रही। उसके बाद आकर चौकी पर बैठ गई। अभी उसे लगने लगा, जहा तक नजर जाती है, सब मानो खाली हो गया है—मानो अभी किसी चीज से उसे कोई वास्ता नही रहा और मरने तक कभी कोई चीज मानो उसके किसी काम न आयेगी। लेकिन उसके लिये गम या गिला, कुछ भी मन मे नही। इसी तरह सूखी आंखो बाहर के पेड़-पौधों को देखती हुई वह घुन-सी बैठी रही। ख्याल ही नही कि समय कसे कट रहा है। कब सांझ बीत गई, नौकर कब बत्ती रख गया, उसे कुछ भी पता न चला। सुध लौटी अपनी आंखो

के आँसू से। झटपट आँखों को पोंछ डाला, हाथ से देखा, जान कब से बूंद बूंद आसू चू रहा था कि उसकी छाती का कपड़ा तक भीग गया था। छि-छि, नौकर-चाकर आते-जाते रहे, शायद हो कि उनकी निगाह पड़ी हो, जाने क्या सोचा हो शायद मारे शम के वह जरूरत से भी आज किसी को बुला न सकी। रात को बिछावन पर लेटी, खिड़की खोलकर अधेर की तरफ ताकती रही, वैसा ही वस्तु-वण हीन शूय अ धकार जैसा उसका सारा भविष्य आँखो मे तैरने लगा। उसके बाद कब नींद आ गई थी, याद नही लेकिन नींद जब टूटी, तो सुबह क स्निग्ध प्रकाश से सारा कमरा भर गया था—सबसे पहले उसे उसकी याद आई, जिससे जि दगी मे पाँच छ दिन से ज्यादा बात भी नहीं की। और याद आया, जो अजानी पीडा उसकी नींद मे घूमती फिर रही थी, उसी से जाने कैसे तो उस आदमी का गहरा योग है।

दिन चढ़ने लगा। लेकिन जभी उसे याद आ जाता कि सारे काम-काजों मे उसकी एक आख और एक कान वहाँ तो पडा है, अपने आपसे ही उसे शम लग आती। मगर यह तो कुछ भी नही, यह तो सिफ उस यत्र को देखने के लिए मन का कौतूहल है, एक बार उसे देखा नहीं कि सारा आग्रह जाता रहेगा, आज नहीं तो कल जाता रहेगा—इस तरह से भी बहुत बार उसने अपने को समझाया, लेकिन कोई नतीजा न निकला। बल्कि ज्यो-ज्यो बेला बढ़ती गई, उसकी उत्कठा मानो रह-रह कर आशका मे बदलने लगी। पूस का दोपहर का सूरज धीरे धीरे एक ओर को झुक पडा। कल जो आदमी सदा के लिये यहाँ से चला जा रहा है, आज अगर वह न आ सके, इतना समय नष्ट न कर सके, तो इससे अचरज की कौन-सी बात है! अपने अ तिम सबल को किसी के हाथ ज्यादा दाम पर बेच कर चला गया हो, तो भी उसे दोष कौन दे? उन दोनो मे जो अ तिम बातें हुई थी, उ हे उलट पुलट कर बडी ही कचोट के साथ वह सोचने लगी कि उसके मन मे चाहे जो हो, जबान से उसने इसकी बहुत ज्यादा ख्वाहिश नहीं जाहिर की। लिहाजा मेरी अनिच्छा समझ कर वह अगर पलट गया हो, तो दर्पिता को वाजिब ही सजा मिली—हृदय के भीतर से जो गहरा धिक्कार बार-बार उठने लगा, उसका जवाब किसी ओर भी उसे ढू ढे न मिला। लेकिन परेश को या और किसी

को किसी बहाने उसके पास भेजा जा सकता है या नही और भेजा भी जाय तो उनसे भेंट होगी या नही आना वे कबूल करेंगे या नही—मन मे यह तर्क वितर्क करके, छट पट करके घडी की ओर देख, बाहर-भीतर करते हुए जब किसी भी तरह उसका समय नही कट रहा था कि ऐसे वक्त परेश ने आकर खबर दी, माँ जी, नीचे आओ, बाबू आए।

विजया का चेहरा फीका हो गया बोली—कौन बाबू र ? परेश बोला—कल जो आए थे। हाथ में चमडे का बडा सा बक्सा है मा जी।

अच्छा, तू बाबू को बैठने को कहा मैं आई।

दो एक मिनट मे विजया ने आकर नमस्कार किया आज उसके पहनावे और खुले रूखे केशो मे ऐसी एक खासियत और ढग था, जो किसी की नजर से चूकने का न था। कल से आज के इस फर्क को गौर करके कुछ क्षण के लिए नरेन से कुछ कहते न बना। उसकी चकित निगाहो का अनुसरण करके विजया की दृष्टि जब अपने पर लौट आई तो मारे शर्म के वह गड सी गई। माइक्रोसकोप का बँग अभी तक उसके हाथ मे ही था। उसे मेज पर रखकर उसने धीरे से कहा—नमस्कार! विलायत म रहते हुए मैंने चित्र बनाना सीखा था। आपको तो मैंन और भी कई बार देखा है, लेकिन आज आपके कमरे मे प्रवेश करते ही मेरी आख खुल गई। मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ, जो भी तस्वीर बनाना जानता है, आज उसी को आपको देखकर लोभ होगा। वाह, कितनी सुदर!

मन ही मन विजया ने समझा, सौदर्य के चरणो यह निश्छल भक्त का स्वार्थ की बू से रहित अकलुप स्तोत्र बरबस ही उच्छ्वसित् हो उठा है और यह महज इसी के मुँह से निकल सकती है। लेकिन कुछ ही क्षण म अपने का सवरण करके नजर उठा कर गम्भीर स्वर में बोली—मुझको इस तरह अप्रतिभ करना क्या आपको उचित है? फिर मैंने तो कोई चीज खरीदने के लिए आपको बुलाया था, तस्वीर बनाने के लिए तो नही बुलाया।

जवाब सुनकर नरेन का मुँह सूख गया। लज्जा से निहायत सिमट कर बहुत ही झिझकते हुए यह कहकर क्षमा माँगने लगा कि मैंने कुछ सोच कर ऐसा नही कहा—मुझसे बडी भूल हो गई—आइ दे कभी मैं—आदि इत्यादि।

उसको इस तरह पछताते देख विजया हँसी। स्निग्ध हँसी से मुखड़े को खिला कर कहा—लाइए देखूँ आपका यंत्र।

नरेन बच गया। "दिखाता हूँ" कहकर झट बढ़कर वह यंत्र को निकालने लगा। इस कमरे में प्रकाश कम होता जा रहा था। यह देख कर दूसरा कमरा दिखाती हुई विजया ने कहा—इस बगल के कमरे में अभी भी रोशनी है, चलिए, वहीं चलें।

चलिये। बक्स हाथ में लेकर वह गृहस्वामिनी के पीछे पीछे बगल के कमरे में पहुंचा। एक छोटी सी तिपाई पर उस यंत्र को रखकर दो कुर्सियाँ लेकर बैठ गये। नरेन बोला—अब देखिये। फिर बताइये कि इसे काम में कैसे लाया जाता है।

जिसे इस अणुवीक्षण यंत्र से साक्षात परिचय नहीं, वह सोच भी नहीं सकता कि इस छोटी-सी चीज में से कितना बड़ा आश्चर्य देखा जा सकता है। बाहर के अपार ब्रह्माण्ड जैसा ही ब्रह्माण्ड मनुष्य की मुट्ठी में आ सकता है, इसका आभास केवल इस यंत्र से ही पाया जा सकता है। इस छोटी सी भूमिका के साथ उसने विजया को ध्यान देने के लिए कहा। विलायत में डाक्टरी पढ़ने के बाद उसके ज्ञान की प्यास जीवाणु-विद्या की ओर ही झुकी थी। इसलिए एक ओर जितना ही इससे उसका परिचय घनिष्ठ हो उठा था, उतना ही अपर्याप्त हो उठा था उसका संग्रह। वह सारा कुछ अपने इस प्राण से प्यारे यंत्र के साथ विजया को देने के लिए ले आया था। उसने सोचा, यह सब न दिया जाय तो सिर्फ इस यंत्र को ही लेकर कोई क्या करेगा? पहले तो विजया कुछ देख न सकी—केवल धुआं और धुंधलका। जितना ही नरेन पूछता कि क्या देख रही है, उतनी ही विजया को हँसी आती। न ध्यान था इधर, न चेष्टा। देखने का कौशल वह जी जान से बताने की कोशिश कर रहा था, एक एक कल पुर्जा तरह तरह से घुमा फिरा कर देखना सहज बनाने की चेष्टा कर रहा था, मगर देखे कौन? जो समझा रहा था, उसकी आवाज से दूसरे का कलेजा डोल डोल उठता था, लम्बी सांसों से उसके बिखरे बाल उड़कर सर्वाङ्ग में रोमांच ला रहे थे। हाथ से हाथ छू जाता कि देह अवश सी हो जाती थी—जीवाणु के स्वच्छ शरीर के भीतर क्या है, क्या नहीं है यह

जानकर उसका क्या आता-जाता है ? कौन मलेरिया से उजड रहा है, और कौन तपेदिक से घर सूने कर रहा है—यह जान चीन्ह कर उसे क्या लाभ ? आखिर वह उसे रोक तो सकती नहीं ! आखिर वह डाक्टर तो है नहीं ।

दसेक मिनट जूझ कर नरेन खीझ कर सीधे उठ बैठा । बोला छोडिए—मी, यह आपके वस का नहीं । ऐसी मोटी अक्ल मैंने देखी ही नहीं ।

जी-जान से हँसी रोक कर विजया बोली—मेरी अक्ल मोटी है या आप समझा नहीं पाते !

अपनी रूखी बात से मन ही मन शर्मिंदा होकर नरेन बोला—और कैसे समझाऊँ कहिए ? आपकी अक्ल ऐसी कुछ मोटी नहीं, लेकिन मैं समझता हूं, आप ध्यान ही नहीं दे रही हैं । मैं बकबक करके जान दे रहा हूं और आप नाहक ही उसमें आँख गडा कर मुँह नीचे किये सिर्फ हँस रही हैं ।

किसने कहा मैं हँस रही हूँ ।

मैं कह रहा हूं ।

आपकी गलती है ।

मेरी गलती ? खैर, वही सही । मगर यह यन्त्र तो गलत नहीं, फिर क्यों देख नहीं पाईं ।

आपका यन्त्र खराब है, इसलिये ।

नरेन अचरज से अवाक् हो गया । कहा, खराब ! पता है आपको, ऐसा पावरफुल माइक्रोसकोप यहां ज्यादा लोगों को नहीं है ? ऐसा साफ दिखाने मे —और खुद एक बार जाच देखने की वेसब्री से झुकने गया कि विजया के माथा से माथा लड गया ।

ऊ—कहकर विजया ने सर हटा लिया और सहलाने लगी । नरेन बेमौके पडकर क्या तो कहने जा रहा था कि वह हँस पडी । बोली—माथा लडा देने से क्या होता है, मालूम है ? सींग निकलता है ।

नरेन हँसा । बोला—निकलता हो तो आप ही के माथे से निकलना चाहिये ।

क्या खूब । आपके इस टूटे हुए पुराने यन्त्र को मैंने अच्छा नहीं कहा,

इस लिए मेरा माथा सींग निकलने लायक हो गया।

नरेन्द्र हँसा तो, मगर उसका मुँह सूख गया। सिर हिला कर बोला— मैं सच कह रहा हूँ आपसे टूटा हुआ नहीं है। चूँकि मैं फटाहाल हूँ इसलिए आपको लग रहा है कि मैं रुपये ठग लेना चाहता हूँ, पर बाद में आपको पता चलेगा।

विजया बोली—बाद में पता चल कर क्या होगा, कहिये? फिर आपको पाऊँगी कहाँ?

नरेन तीखे स्वर में बोला—फिर आपने क्यों कहा कि आप लेंगी। नाहक ही मुझे कष्ट क्यों दिया?

विजया गम्भीर स्वर में बोली—अपने ही क्यों नहीं बताया था कि वह टूटा ?

लेकिन तुरन्त अपना रंजिश घोट गया और बोला—खैर, वही सही। मैं तर्क नहीं करना चाहता—यह टूटा ही है। आपने इतना सा नुकसान तो मेरा कर दिया कि अब कल मेरा जाना न हो सकेगा। परन्तु सब आपकी तरह अंधे नहीं हैं, कलकत्ते में मैं मजे से बेच लूँगा सो जानिये। अच्छा तो जाता हूँ। वह यन्त्र को बक्स में सहेजने लगा।

विजया गम्भीर होकर बोली—मगर अभी आप जा कैसे सकते हैं? आपको तो खाकर जाना होगा।

नहीं, उसकी जरूरत नहीं।

जरूरत तो है।

नरेन ने कहा—आप मन ही मन हँस रही हैं। मेरा मजाक उड़ा रही हैं।

कल खाने को कहा था, तो क्या मजाक उड़ाया था। वह नहीं होने का आपको खाकर जाना पड़ेगा। जरा देर बैठिए, मैं जाती हूँ यह कह कर अपनी हँसी दबाती हुई विजया मारे कमरे में रूप की तरंगें लहरा कर चली गई। पाँचेक मिनट बाद वह खुद अपने हाथ में भोजन की थाली और नौकर के हाथों चाय का इन्तजाम लेकर लौट आई। तिपाई को खाली देख कर कहा इसी बीच सहेज भी लिया। गुस्सा तो कम नहीं है देखती हूँ।

नरेन जरा उदास-सा बोला—आप नहीं लेंगी—इसमें गुस्सा क्या ? लेकिन जरा सोच ' लें, इतनी भारी चीज लेकर इतनी दूर आने और जाने में तकलीफ तो होती है ।

मेज पर थाली रखकर विजया ने 'कहा—हो सकती है । लेकिन यह तकलीफ आपने मेरी खातिर तो नहीं की, की है अपने लिये । खैर, खाइए । मैं चाय तैयार करती हूं ।

नरेन बैठा ही रह गया, यह देखकर र बोली—न होगा, तो मैं ही ले लूंगी उसे, आपको ढोकर नहीं ले जाना होगा । आप खाना शुरू कीजिए ।

*अपने को अपमानित समझ कर नरेन बोला—मैंने दया करने का अनु-*राध तो नहीं किया ।

विजया बोली, उस दिन लेकिन किया था, जब मामा की ओर से कहने आये थे ।

वह दूसरे के लिए, अपने लिए नहीं । अपनी यह आदत नहीं ।

इसमें सच्चाई थी, विजया से यह छिपी न थी । इसलिए उसे बात जरा लगी । बोली--सो जो भी हो, उसे आप वापिस नहीं ले जा सकते—वह यहीं रहेगा । लीजिए, खाइये ।

संदिग्ध स्वर से नरेश ने पूछा—इसका मतलब ?

विजया बोली, आखिर कुछ तो मतलब है ।

जवाब सुनकर कुछ देर वह स्तब्ध होकर बैठा रहा । शायद मन में उस मतलब की खोज की और तुरन्त गुस्से में आकर बोला—वह क्या है, मैं वही साफ-साफ आपसे जानना चाहता हूं । खरीदने के बहाने मंगवा कर उसे क्या रोक रखना चाहती हैं । पिताजी क्या इसे भी आपके पास गिरवी रख गये थे ? तब तो आप मुझे भी रोक ले सकती हैं ? मैं मैं कह सकती हैं कि पिता जी मुझे भी आपके पास बंधक रख गये हैं ।

विजया का चेहरा तमतमा आया । गर्दन घुमाकर बोली—कालीपदो खड़ा क्या है तू ? ये चीजें उतार कर रख दे और पान आ ।

नौकर ने केतली-बेतली उतार ली और चला गया । विजया सिर झुका-

कर चुपचाप चाय बनाने लगी और पास ही गुस्से मे मुँह फुलाकर नरेन चौकी पर बैठा रहा।

१२

सष्टि तत्व की जो गूढ वातें हैं, उनके वारे मे विजया न बडे वडे पडितो से वहुत-वहुत विचार सुने, वहुत वहुत गवेषणायें सुनी लेकिन जो हिस्सा उमका ज्ञेय है, वह वहाँ से शुरू हुआ, काय क्या है उसका, उसकी आकृति और प्रकृति कैसी है इतिहास क्या है उसका—यह सव इतने सुलझे और साफ शब्दों म और किसी से कभी सुना है, उसे याद न आया। जिस यन्त्र को उसने टूटा कह कर अभी-अभी हँसी उडाई, उसी के सहारे क्या ही अनोखा और अद्भुत व्यापार उसे दिखाई पडा। इस दुबल-पतले और पगले से आदमी ने डाक्टरी पास की है, इसी पर तो यकीन नही आना चाहता। और सिफ इतना ही नही, जीवो के बारे मे उसकी जानकारी की गहराई, विश्वास की दृढता, याद रखने की गजब की शक्ति का परिचय पाकर वह हैरान रह गई। मगर एक मामूली से आदमी जैसा इसे नाराज कर देना कितना आसान है? अन्त-अन्त में कुछ तो वह सुन रही थी और कुछ उसके कानो तक पहुचता ही न था। मुँह की तरफ टुकुर टुकुर ताकती थी। अपने आवेश मे जब वह बकता ही चला जा रहा था, तब श्रोता सभवत उसके त्याग, उसकी सतता, उसके भोलेपन की मन ही मन सोच स्नेह श्रद्धा और भक्ति से विभोर बनी बैठी थी।

अचानक नरेन को ध्यान आया कि वह फिजूल ही बकता चला जा रहा है। बोला, आप कुछ सुन नही रही है।

चकित-सी विजया बोली—सुन तो रही हूँ।

क्या सुन रही हैं, कहिये तो?

'वा, भला हर कोई एक ही दिन म सीख सकता है?

नरेन हताश होकर बोला—न, आप से कुछ भी न हो सकेगा। जलम

मे आप जसी अनमनी मैंने दूसरी देखी नही ।

विजया बिना जरा झिझके बोली—एक ही दिन मे होता है कहीं ? आपने क्या एक ही दिन मे जान लिया था ?

नरेन ठठा कर हंस पडा—आपको तो सौ साल म भी न आयगा । फिर यह मब बतायगा भी कौन ?

हाठ दबाकर हंसती हुई विजया बोली—आप । नही तो आपका यह टूटा यन्त्र लगा कौन ?

नरेन गम्भीर होकर बोला—आपके लेन की भी जरूरत नही और मैं सिखाने से भी रहा ।

विजया, बोली—तो चित्र बनाना सिखा दीजिये । वह तो सीख सकू गी ?

नरेन बिगड कर बोला—वह भी नही । जिसमे लोगो को खाने-पीने की सुध नही रहती, जब उसी मे आप जी न लगा सकी, तो चित्र मे ध्यान दे सकेंगी ? हर्गिज नही ।

चित्र बनाना भी नही सीख सकू गी ?

नही ।

विजया बनावटी गम्भीरता के साथ बोली—कुछ न सीख पाऊ तो सिर पर सीग उग आयेंग ।

उसके कहने की अदा और बात से नरेन जोरो से हंस पड़ा । बोला—यही आपकी मही मजा है ।

विजया न मुंह घुमाकर हंसी रोकी । बोली—क्या नही । यह क्यों नही कहते कि आपम सिखाने की क्षमता नहीं । मगर ये नौकर क्या कर रहे है बत्ती क्यो नही द जाते ? जरा बैठें आप, मैं बत्ती को कह आऊं । वह उठी और दरवाजे का पर्दा हटाया कि इस तरह से ठिठक गई गोया भूत देखा हो । सामने ही बठक मे दो कुर्सियों पर दोनो बाप-बेटे, रासबिहारी और विलास-बिहारी बैठे थे । विलास के चेहरे पर जैसे किसी ने स्याही पोत दी हो । अपने को जब्त करके बिजया ने आगे बढ़कर पूछा—आप कब आये चाचा जी ? मुझे बुलाया क्यो नही ?

रासबिहारी सूखी हंसी हंस कर बोले—आधा घण्टा हो गया बिटिया ।

तुम बातो म मशगूल थीं, इसीलिए नहीं बुलाया। यही शायद जगदीश का लडका है ? क्या चाहता है ?

बगल के कमरे तक आव ाज नही पहुचे, विजया ऐसे धीमे से बोली—अपना माइक्रोसकोप बेच कर वे बर्मा चल देना चाहते है। वही दिखा रहे थे।

विलास चीख सा पडा—माइक्रोसकोप। ठगी की और कोई जगह नही मिली उसे।

रासविहारी ने बेटे की भत्सना की—ऐसा कहना क्या ? उसका मतलब तो हम नही जानते—अच्छा भी तो हो सकता है।

विजया की ओर ताकते हुए गदन हिलाकर बोले—जिसके बारे म जानता नही, उस पर अपनी राय देना मैं वाजिब नही समझता। उसका अभि प्राय बुरा न भी तो हो सकता ह, क्यो बिटिया ? जरा रुके। फिर बोले—लेकिन जोर करके कुछ कहा भी नही जा सकता, यह भी ठीक है। खैर, हो चाहे जो भी, अपने को उससे मतलब भी क्या ? दूरबीन भी होता तो जब कभी दूरदराज देखने के काम आता—कौन, कालीपदो। उस कमरे मे बत्ती देने जा रहा है। उन बाबू स कह देना, य न हम न खरीद सकेंगे। वे जा सकते ह।

विजया डरते डरते बोली—मैं कह चुकी ँगी।

रासविहारी कुछ चकित होकर बोले—लोगी। आखिर क्या ? वह अपने किस काम आयगा ?

विजया चुप हो रही।

रासविहारी ने पूछा—कितना दाम माँगते हैं ?

दो सौ रुपये।

रासविहारी की भौहे फैल गई। बोले—दो सौ। फिर तो विलास ने निहायत—क्या विलास, कालेज मे एफ ए पढते समय कैमिस्ट्री मे तो तुमने यह सब काफी देखा है—एक माइक्रोसकोप का दाम दो सौ रुपये ? कालीपदो, जा, उनसे कह दे, यह मनसूबा यहाँ नही चलने का।

लेकिन जिससे कहना था, वह अपने ही कानो सब सुन रहा था, इसमें सदेह नही। कालीपदो जाने लगा तो विजया ने शान्त लेकिन दृढ स्वर मे कहा-

तुम सिर्फ वत्ती दे आओ। कहना होगा, सो मैं खुद ही कहूँगी।

विलास ने श्लेष करके पिता से कहा—झूठमूठ आप क्यों बेआबरू होने गये पिता जी। उन्हें शायद अभी भी कुछ दिखाना बाकी है।

रासविहारी कुछ बोले नहीं, लेकिन गुस्से से विजया का चेहरा लाल हो उठा। विलास ने यह देखा, फिर भी कह उठा—माइक्रोस्कोप तो बहुत तरह के हमने भी देखे हैं पिता जी, मगर ठठाकर हँसने का कोई विषय कभी किसी में नहीं पाया।

कल उसे भोजन कराया गया था, यह भी उसने सुना था। आज की यह हँसी तो कानों सुनी। विजया का आज का साज सिंगार भी उसकी नजर से न चूका। दाह के मारे वह इस कदर जल रहा था कि सही गलत का होशो-हवास जाता रहा। विजया विलास की तरफ पीठ करके बोली—मुझ से कोई खास बात करनी है चाचा जी ?

रासविहारी ने नजर बचाकर बेटे को कटाक्ष किया और जरा हँसकर स्निग्ध स्वर से बोले—बात तो है बिटिया। मगर उसकी जल्दी भी क्या ?

थोड़ा थम कर बोले—और, मैंने विचार कर देखा, जब उनसे कह चुकी हो, तो जो भी हो चाहे, लेना तो चाहिये ही। आखिर दो सौ रुपये का दाम ज्यादा है या बात का ? न हो तो उन्हें कल आकर रुपये ले जाने की कहला दो न बेटी।

विजया ने इस बात का जवाब न देकर पूछा—आपसे क्या कल बात नहीं हो सकती है चाचा जी ?

रासविहारी ने हैरान सा होकर पूछा—क्यों भला ?

विजया एक पल रुकी और हिचक झिझक को बलपूर्वक रोक कर बोली—उन्हें रात हो रही है—दूर जाना है। उनसे मुझे कुछ बात करनी है।

उसकी इस ढीठ साफगोई से मन ही मन वे हैरान हुए, लेकिन बाहर से इस भाव को जरा भी जाहिर न होने दिया। देखा, बेटे की दो छोटी-छोटी आँखें खूँखार जानवर सी अँधेरे में झक झक कर रही हैं और जाने क्या तो कहने के लिए वह जूझ सा रहा है। धूर्त रासविहारी लहमे में स्थिति समझ गये और कटाक्ष से बेटे को रोकते हुए खुशी खुशी बोले—ठीक तो है। कल

सबेरे ही आऊँगा मैं। विलास बेटे अँधेरा हो जायगा। चलो हम लोग चलें। वे उठ खड़े हुए। बेटे की बाह में हल्का सा भटका देकर उसके रुंधे हुए प्रचंड क्रोध के फट पड़ने के पहले ही उसे साथ लेकर चल दिये।

विजया ने उसी वक्त से विलास की तरफ ताका नहीं था। लिहाजा उसके चेहरे का भाव, उसकी निगाह का आँखों न देख पाने के बावजूद मन-ही मन सारा कुछ अनुभव करके बड़ी देर तक यह लकड़ी सी खड़ी रह गई।

कालीपदो कमरे मे बत्ती देने आया। बाला, उस कमरे म बत्ती दे आया मा जी।

अच्छा, यह कर विजया ने अपने को सयत किया और पर्दा हटा कर उस कमरे में दाखिल हुई। नरेन गदन झुकाये कुछ सोच रहा था, उठ खड़ा हुआ। उसके निश्वास जब्त करने की नाकामयाब कोशिश भी विजया ताड़ गई। कुछ देर खड़ा रह कर नरेन दु ख के साथ बोला—इसे मैं साथ ही लिए जा रहा हू। आज का दिन आपका बड़ा बुरा बीता। जाने सुबह किसका मुँह देखकर जगी थीं। मैंने आपको बहुत बुरा भला कहा, व भी सुना गए।

विजया का हृदय तब भी जल रहा था मुँह उठा कर ताकते ही उसके अन्तर का दाह दोनो आखो म दीप्त हो उठा। अविचलित कठ से वह बोली—जिसमे रोज उसी का मुँह देखकर मेरी नींद टूटे। मैं इसलिए नहीं कह रही हू, चूँकि आपने कानो सुन लिया, आपके बारे मे उन्होने असम्मान की जो बातें कही हैं, वह उनकी अनधिकार चर्चा है यह मैं उन्हे कल समझा दूँगी।

अतिथि का अपमान विजया को कैसा लगा, यह नरेन समझ गया था लेकिन शान्त सहज भाव से कहा—क्या जरूरत पड़ी है। चूँकि इन चीजो के बारे मे उन्हे जानकारी नहीं है, इसी से सन्देह हुआ है, वरना मेरे असम्मान से उन्हे क्या लाभ ? शुरू मे आपको भी तो कई कारणो से सन्देह हुआ था, तो क्या असम्मान करने के लिए ? वे आपके अपने हैं शुभैषी हैं, मेरी वजह से उन्हे नाराज न करें। हाँ, रात होती जा रही है—मैं जाता हू।

कल, या परसो एक बार आ सकेंगे ?

कल या परसो ? लेकिन अब तो समय न होगा। कल मैं जा रहा हू, कल ही बर्मा जरूर नहीं जा रहा हू। कलकत्ते मे दो चार दिन ठहरना होगा।

लेकिन भेंट करने का तो अब—

विजया की दोनो आखें आंसुआ मे डूब गई। वह न तो नजर उठा सकी, न बोल सकी।

नरेन स्वय हँस पडा। बोला—आप खुद इतना हँसाती है और ऐसी मामूली-सी बात पर आपको इतना गुस्सा आता है? मैंने ही बल्कि खीझकर आपको मोटी अक्ल, और भी जाने क्या-क्या कह दिया, लेकिन उस पर तो नाराज न हुई, बल्कि होठ दबा कर हँस रही थी, देखकर मुझे और भी गुस्सा आ रहा था। आप मुझे सदा याद आती रहेगी—आप खूब हँसा सकती हैं।

वर्षा थम जाने के बाद हवा के झोके से जैसे पत्ते का पानी चू पडता है, वैसे ही अंतिम बात पर विजया की आखो से आसू की कुछ बूँदें टप टप टपक पडी। लेकिन कही दूसरे की निगाह न पडे, इस डर से वह माथा नीचे किए चुपचाप खडी रही।

नरेन बोला—आप इसे न लें सकी, इसके लिए दुखी हू—कहकर बीच ही मे इस सूधे वैज्ञानिक ने पल भर एक अजीब हरकत कर दी। यकायक हाथ बढाकर विजया की ठोढी पकड कर कह उठा—अरे आप रो रही है?

बिजली की गति से विजया दो कदम पीछे हट गई। आखें पोछ ली। नरेन हक्का-बक्का सा पूछ बैठा—क्या हो गया?

ये बातें उस बेचारे की बुद्धि के परे हैं। यह कीटाणुओ को पहचानता है, उनके नाम-धाम, जात गोत की कोई भी खबर उसे अजानी नही, उनके काम-करतूत, तौर-तरीके के बारे मे उससे कभी भी तिल भर भूल नही होती, उनके आचार-व्यवहार का सारा लेखा उसकी अँगुली की नोक पर है—मगर यह क्या? जिसे नासमझ कहकर गाली देने से छिपकर हँसती है और श्रद्धा तथा कृतज्ञतावश प्रशसा करने से बेतरह रो पडती है, ऐसी अजीब फितरत के जीव से ससार के ज्ञानी लोगो का सहज कारबार कैसे चले? वह कुछ देर हक्का-बक्का खडा रहा और ज्यो ही बैग उठाकर चलने लगा कि विजया रुँधे कण्ठ से बोल उठी—वह मेरा है उसे आप रख दीजिए और अपनी रुलाई के आवेग को न रोक पाकर जल्दी से कमरे से निकल गई।

-नरेन ने उसे रख दिया और किंकर्तव्यविमूढ सा कुछ देर खडा रहा।

बाहर आकर देखा, कोई कहीं नहीं। और भी एकाध मिनट चुप खड़ा राह देखता रहा अन्त में खाली हाथ अँधेरी राह पर चल पड़ा।

विजया लौटी तो देखा, बैग पड़ा है, मालिक नदारद। वह रुपया लाने के लिए कमरे में गई थी लेकिन बिस्तर में मुँह गाड़ कर रुलाई रोकने में इतना समय लग गया, इसका होश न था। आवाज पाकर कालीपदो आया। पूछने पर जबानी उसने गिरस्ती के काम की एक लम्बी फिहरिश्त पेश कर दी—कहा, मैं तो अन्दर था, जाने बाबू कब चले गये। दरबान कन्हैयासिंह ने सफाई दी, मैंने अरहर की दाल उतारी और रोटी ठोक रहा था, कब जो दुबक कर बाबू निकल गए, मालूम नहीं।

१३

विलासबिहारी की विशाल कीर्ति—गाँव में ब्रह्म मन्दिर की प्रतिष्ठा का दिन नजदीक आ गया। एक-एक कर अतिथि जुटने लगे। न केवल कलकत्ते से, आस-पास से भी वृद्ध लोग सपत्नीक पधारे। शुभ दिन कल था। आज शाम को रासबिहारी ने अपने यहाँ एक प्रीतिभोज का आयोजन किया।

स्वार्थ-ज्ञान की आनवा दुनिया में किसी किसी का कैसा कुशाग्र बुद्धि और दूरदर्शी किए देती है वह नीचे की घटना से साबित होगी।

आमन्त्रितों के बीच में बैठकर बूढ़े रासबिहारी ने अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए अपने छुटपन के साथी स्वर्गीय वनमाली का जिक्र करते हुए अधमुन्दी आँखों गम्भीर स्वर में कहा—भगवान ने उन्हें असमय में ही बुला लिया—उनकी मंगल इच्छा के खिलाफ मेरी कोई नालिश नहीं लेकिन वह मुझे क्या बनाकर रख गया है यह मुझे बाहर से देखकर आप अनुमान तक नहीं कर सकते। गरचे हम दोनों के मिलने का दिन दिन दिन करीब आ रहा है मैं हर पल उसका आभास पा रहा हूँ फिर भी उस एक मात्र, अद्वितीय निराकार ब्रह्म के चरणों में मेरी प्रार्थना है कि उस दिन को जिसमें वे और भी

निकट कर दें। यह कह कर उन्होंने कुरते से आँखों के कोनों को पोछा। इसके बाद जरा देर मौन, गम्भीर बने रहे, फिर पहले से ज्यादा खिल कर बात करने लगे। उनके बचपन की खेलकूद, किशोरावस्था की पढाई लिखाई, उसके बाद यौवन मे सत्य धर्म अपनाने का इतिहास बना कर बोले, लेकिन गाँव का अत्याचार वनमाली के कोमल हृदय से न सहा गया—वे कलकत्ते चले गये। लेकिन मैंने सारे जुल्मो सितम सह कर गाँव मे ही रहने की शपथ ली। उफ, उन जुल्मो को पूछिये मत! तो भी मैंने मन मे कहा—सत्य की जय होकर ही रहेगी उनकी महिमा से एक दिन जीत ही होगी। वह शुभ दिन आज आ पहुँचा—अभी इतने दिनो के बाद आज यहाँ आप लोगो के चरणो की धूल पडी। वनमाली आज हम लोगो के बीच नही हैं—ये दो दिन पहले ही चले गए, लेकिन मैं आँखें बन्द करते ही देख पाता हूँ, वह, वहाँ के आनन्द से मीठा मीठा हँस रहे हैं। और आँखें मूँदकर वे फिर स्थिर हो रहे।

वहाँ जो मौजूद थे, सबका मन उत्तेजित हो उठा। विजया की दोनो आँखों मे आँसू छलक आये। रासविहारी ने आँखें खोलीं—झट दायाँ हाथ फैलाकर बोले—वह रही उनकी इकलौती लडकी विजया। पिता के सभी गुणों की अधिकारिणी—लेकिन कर्त्तव्य मे कठोर। सत्य मे निर्भीक। स्थिर। और वह मेरा लडका विलासविहारी। ऐसा ही अटल, ऐसा ही दृढ। बाहर से ये दोनो अभी अलग होते हुए भी, हृदय से—हाँ, एक और शुभ दिन नजदीक आ रहा है, जब फिर आप लोगों की चरणधूलि के कल्याण से इन दोनो का सम्मिलित जीवन धन्य होगा।

एक अस्फुट मधुर कलस्वर से सभा मुखरित हो उठी। जो महिला बगल मे बैठी थी, उन्होंने विजया की हथेली को अपने हाथ मे लेकर हलके से दबाया।

एक गहरा दीर्घश्वास छोडकर रासविहारी बोले—वही उनकी अकेली सन्तान है, अपनी आँखों यह दिन देख जाने की उन्हें बडी साध थी। लेकिन कसूर मेरा। आज आप सबके सामने कबूल करता हूँ कि इसका जिम्मेवार मैं हूँ। कमल के पत्ते पर ओस की बूँद सा है मानव का जीवन—यह हम सिर्फ जबानी कहा करते हैं, काम के वक्त याद नही रखते।। वह इतनी जल्दी हमें छोड जायेंगे, यह तो सोचा ही नहीं।

रासबिहारी कुछ देर चुप हो गये। पश्चाताप से बिंदे हृदय की छवि दीपालोक में उनके चेहरे पर फूट उठी। फिर से एक गम्भीर दीर्घश्वास छोड़ते हुए बोले— लेकिन अब मुझे होश आया है। सो अपनी सेहत को देखते हुए आगामी फागुन से ज्यादा देर करने की हिम्मत नहीं पड़ती। क्या पता, कहीं मुझे भी बिना देखे ही जाना पड़े।

फिर एक अ यक्त ध्वनि उठी। रासबिहारी दाएँ और बाएँ देखकर विजया को लक्ष्य करके कहने लगे, वनमाली अपनी सारी जायदाद के-साथ अपनी बिटिया को भी मेरे हाथ सौंप गये हैं मैं भी धम का ख्याल रखते हुए अपना कत्त व्य कर जाऊँगा। आप लोगो के आशीर्वाद से ये भी दीघजीवी हो और सत्य पर अटल रहकर अपना कत्त व्य करें। जहा से उनके पिता को निर्वासित किया गया था, वहीं जम कर सत्य धम का प्रचार करें, यही मेरी एकमात्र प्राथना है।

बूढ़े आचार्य दयालचन्द्र ने आशीर्वाद बरसाया।

इसके बाद रासबिहारी ने विजया से कहा—'बिटिया, तुम्हारे पिता नहीं, तुम्हारी साध्वी माता बहुत पहले ही स्वग चली गई नहीं तो यह बात तुमसे आज मुझे नहीं पूछनी पड़ती। शर्माओ मत बेटी, बोलो, अपने इन पूज नीय अतिथियो को अगले फागुन में फिर चरणों की धूल देने का आम त्रण यहीं कर दूँ।

विजया बोले क्या, क्षोभ, खीझ और भय से उसका गला रुँध गया। वह नजर नीची किये खडी रही। रासबिहारी एक क्षण राह देखकर बोले— दीघजीवी हो बिटिया, तुम्हें कुछ नहीं कहना है—हम लोग समझ गये।

वे उठ खड़े हुए। हाथ जोड़ कर बोले—अगले फागुन में ही आप लोगो के चरणों की धूल की प्राथना करता हूँ।

सब अपनी अपनी सहमति देने लगे। विजया से सहा नहीं गया। वह अव्यक्त स्वर से बोल उठी—पिताजी की मृत्यु के साल भर के अ दर ही उसका गला भर आया। बात को वह पूरी न कर सकी।

रासबिहारी तुर त ताड़ गये। गहरे पछतावे के साथ तुरन्त बोल उठे— ठीक तो बिटिया। यह तो मुझे याद ही न था। मगर तुमने इस बूढ़े की भूल

बना दी।

विजया ने चुपचाप अपनी आँखें पोंछी। रासविहारी ने यह भी गौर किया। निश्वास छोड़ कर गीले गले से बोले—सब उनकी इच्छा। जरा रुक कर बोले—वही होगा। लेकिन उसमें भी तो अब देर नहीं।

उन्होंने सबकी तरफ देख कर कहा—अच्छा, तो शुभ कार्य वैशाख में ही सम्पन्न होगा। आप लोगों से यही बात पक्की रही। विलास, बेटे, रात हो रही है—सुबह से तो काम का अन्त नहीं रहेगा—भोजन का प्रबन्ध—नहीं, नहीं नौकरों के भरोसे नहीं—तुम खुद जाओ—चलो, मैं चलता हूँ—तो आप लोगों की इजाजत हो, तो मैं जरा। बेटे के पीछे पीछे वे अन्दर चले गए।

समय पर प्रीतिभोज हो गया। बड़े पैमाने पर सब कुछ हुआ था, कोई त्रुटि नहीं हुई। रात के करीब बारह बज रहे थे, एक खम्भे की आड़ में अकेली खड़ी विजया पालकी का इन्तजार कर रही थी। सहसा एकाएक उसका आविष्कार करके रासविहारी चौंक उठे—यहाँ अकेली क्यों खड़ी हो बिटिया, अन्दर आओ।

सिर हिलाकर विजया बोली, नहीं चाचाजी, मैं ठीक ही हूँ।

सर्दी लग जायगी बिटिया।

नहीं लगेगी।

रासविहारी ने 'घर की लक्ष्मी' आदि कह कर एक किस्त और आशीर्वाद दिया। विजया पत्थर की मूरत सी खड़ी स्नेह के इस अभिनय को सहती रही।

रासविहारी को अचानक एक बात याद आ गई। बोले—तुम्हें यह कहना करई भूल गया था बेटी। उस माइक्रोस्कोप की कीमत मैंने उसे दे दी है।

आठ-दस दिन हो गए, नरेन वहीं जो उसे रखकर गया है, फिर नहीं आया। पीछे के दिन विजया के कैसे कटे, यह वही जानती है। उसने उसके फूफो के घर की महज दूरी जानी थी, लेकिन यह पूछा भी नहीं कि वह है कहाँ किस गाँव में। अपनी यह भूल उसे गरम सीखचे सी चुभती रही, मगर कोई उपाय करते न बना। अभी रासविहारी ने जो कहा, वह चकित हो गई। पूछा

—कब दिया ?

रासबिहारी ने जरा सोच कर कहा—क्या जानें, शायद उसके दूसरे ही दिन। मैंने सुना, लेने के लिए ही तुमने उसे रख लिया। बातें बात ही है कि जब बात दी जा चुकी, तब चाहे ठगाए या जो हो, रुपए भी दे दिए गए—जिन्दगी भर यही तो मैं समझता आया हूँ। मैंने देखा, बेचारे को रुपयों की सख्त जरूरत है। रुपए मिल जाएँ तो वह चला जाय—जाकर कुछ करने की जुगत कर सके। हजार हो, वही भी तो आखिर कोई विराना नहीं बिटिया, वह भी मेरे एक मित्र का ही लड़का है। मैंने देखा, जाने के लिए अकुला गया है—रुपये मिलें कि जाय। फिर जैसा तुम्हारा देना, वैसा ही मेरा देना। सो मैंने फौरन दे दिया। उसका धर्म वह जाने। दस रुपये ज्यादा लिए हैं, तो ले।

विजया के मुँह मे जीभ मानो जम गई। ऐसा लगा, अब अभी बात नहीं निकलेगी। कुछ देर तक काफी कोशिश करके उसने पूछा—कहा दिया ?

पता नहीं कैसे, रासबिहारी ने सवाल का बिल्कुल अलग समझा तथा चौंक कर बोले—अरे, कह क्या रही हो, रुपए दुबारे ले लिए क्या? लेकिन उसकी सूरत से तो ऐसा नहीं लगा? और दोष भी किसे दूँ। इसी तरह से लोगों से ठगाते ठगाते अपनी दाढी पका ली। खैर, दो सौ और गए। वे रुपए, न होगा, मैं ही भरूँगा—आजीवन ऐसी सजा ढोते-ढोते कधे पर ढेला पड गया है, अब महसूस नहीं होता। खैर वह मैं

विजया से और सहा नहीं गया। वह रूखे स्वर मे बोली—आप झूठ-मूठ मे खौफ क्यों खा रहे है चाचाजी। दो बार रुपये लेने वाले आदमी वे नहीं है—भूखे मर जाए, तब भी नहीं। मगर आपसे भेंट कहा हुई? रुपए दिए कब आपने ?

रासबिहारी बेहद निश्चिंत होकर निश्वास छोड़ते हुए बोले—खैर, राहत मिली। रुपये कुछ कम भी तो नहीं—दो सौ! जाने के लिए परेशान। अचानक भेंट होते ही—कौन खड़ा है? विलास! पालकी का क्या हुआ? सर्दी लग रही है! जो काम खुद न देखूँ वही न होने का? और बिगड कर एक खम्भे को विलास समझ कर वे जल्दी से उसी तरफ चल दिये।

१४

वह भी दिन था कि विलास को आत्मसमर्पण करना विजया के लिए कुछ कठिन न था। लेकिन आज सिर्फ़ विलास क्यों, इतनी बड़ी दुनियाँ के इतने करोड़ लोगों मे से एक के सिवाय और किसी ने उसे स्पर्श किया है, यह सोच कर भी उसका सर्वांग घृणा और लज्जा से और सारा अन्त करण किस एक गहरे पाप के भय से भीत और सशंकित हो उठता। इसी बात को वह रासविहारी के यहाँ से पालकी पर लौटते समय तिल-तिल करके जाँच परख रही थी।

उसके बारे मे उसके पिता का क्या ख्याल था, यह जानने का पूरा मौका नहीं मिल सका। लेकिन उनके मरने के बाद यह स्थिर सा हो चुका था कि उसके भावी जीवन की धारणा रासबिहारी से मिल कर प्रवाहित होगी। इसमे कोई इधर उधर हो सकता है, इस संभावना की कल्पना तक कभी उसके मन मे नहीं जगी।

पर यह जो एक अनासक्त उदासीन आदमी आसमान के जाने किस अदेखे छोर से अचानक धूमकेतु की नाई आ धमका और पल मे अपनी पूँछ के जोरों के झपेट से सारा कुछ उसने उलट पुलट दिया, उसके निश्चित पथ की लकीर तक को पोछ कर खुद न जाने कहा खिसक पड़ा—निशानी तक नही छोड़ गया—यह सत्य है या कोरा सपना, अपनी सम्पूर्ण आत्मा को जाग्रत करके विजया आज यह सोच रही थी। यदि यह सपना है, तो इसकी माया कब तक और कैसे मिटेगी, और अगर सत्य है, तो वह सत्य जीवन म सार्थक ही कैसे होगा?

घर आकर बिस्तर पर लेट गई, लेकिन नींद उसके उत्तप्त दिमाग के पास तक नही फटकी। उसके हृदय में जो आशंका आज बारम्बार जगने लगी वह यह कि जो चिन्ता कुछ दिनों से उसके हृदय को रात-दिन आंदोलित कर रही है, उसमे कुछ सार भी है कि वह आकाश-कुसुम की माला भर है उसकी?

उसके माँ नही, पिता भी परलोकवासी - भाई-बहन तो कभी थे नही—
अपना कहने को एक रासबिहारी के सिवाय और कोई नही। बधु कहो, बाँधव
कहो, अभिभावक कहो सब वही। लेकिन अपना कोई मतलब गाठने के लिए
ही वे उसे आजन्म परिचित कलकत्ते के समाज से हटाकर यहा गाव मे ले
आए है, विजया की आँखो मे यह बात आज पानी की तरह साफ हो गई।
उस स्वच्छता म से जहा तक देखा जा सकता था, सब उसे साफ दीख रहा
था। चले जाने के लिए नरेन को अनमाँगी सहायता देना, अपने यहाँ प्रीति
भोज का यह आयोजन सम्मानित अतिथियो के सामने विवाह का प्रस्ताव,
उसके शर्म से मौन रह जाने को सम्मति कह कर नि सकोच प्रचार करना—
चारो तरफ से उसे जकडने की जो चेष्टाएँ बूढ़े की चल रही थी, वे छिपी
न रही।

मगर मजा यह कि अत्याचार उपद्रव की जरा भी निशानी रासबिहारी
की किसी बात म कहीं न थी। पर बूढ़े की विनम्र स्नेह सरस मगल कामना की
आड मे खडा उसका कठिन कठोर शासन उसे प्रतिपल ठेल कर जाल की तरफ
बढाए दे रहा था यह अनुभव करते ही अपनी लाचारी की तस्वीर उसे इतनी
साफ दिखाई दी कि सूने घर मे भी वह आतंक से सिहर उठी। तमाम रात
वह जरा देर को भी न सो सकी अपने स्वर्गीय पिता को पुकारती हुई बार-बार
रो रोकर कहती रही—पिताजी, आपने तो इन लोगो को पहचान पाया था,
फिर क्यो मुझे इन लोगो के जबडे मे इस तरह से डाल गए?

कभी उसने खुद ही विलास को पसन्द किया था, और उससे मिल कर
पिता की राय के खिलाफ नरेन को बर्बाद करना चाहा था, वही चाह आज
उसकी सारी शुभ इच्छाओ को पराजित करके विजयी हो रही है, यह सोच कर
उसका कलेजा फटने लगा। वह बार बार यही कहने लगी—स्नेह से अन्धे
होकर पिताजी अनर्थ की इस जड को अपने ही हाथो क्यो नही उखाड गये?
उन्ही की सूझ-बूझ पर सारा कुछ छोड गए, और यही कर गये तो उसकी
स्वाधीनता के रास्ते को चारो तरफ से क्यो बन्द कर गए। पूरे तकिए को
भिगोकर वह यही सोचती रही कि उसके क्षुब्ध अभिमान का विफल नालिश
क्या स्वर्गवासी पिता के कानो पहुच नही पाती? उसके हाथ क्या इसके प्रति-

बार या कोई उपाय नहीं ?

दूसरे दिन परेश की मा के जगाने जगी, तो देर हो चुकी थी। जगते ही सुना बाहरी बैठका आमन्त्रितों से भर गया है, एक वही उपस्थित नहीं। अपनी इस चूक का सुधार लेने के लिए वह जल्दी क्या करेगी आज दिन भर होने वाले समारोह में हंगामे की शायद ही उसको जो माना वितृष्णा से भर गया। नन्दिया के सबेरे के सूरज की किरणें बगीचे म आमों के माथे पर बिखर पड़ी थी और उनकी के पत्तों की फाँकों म से खेलते हुए गाय चराने के लिए जाते हुए चरवाहे बालकों की टोली दिखाई पड रही थी। जब से यहा आई यह दृश्य देखते हुए वह अघाती नहीं थी। बहुत बार ता बहुत-से जरूरी काम छोडकर भी वह इनकी ओर देखती रह जाती थी। लेकिन आज वह सोच भी नही सकी कि अब तक इसमे कौन सा माधुर्य था। बल्कि आज यह उसे पुराना, बासी जैसा फीका लगा। इस दृश्य से अपनी थकी आखो का समेट कर उसने देखा, कालीपदो एक एक छलांग मे तीन-तीन सीढ़ियाँ तडप कर ऊपर आ रहा है। उससे नजर मिलते ही वह बीच ही म रुक गया और बेहद परेशानी का इशारा करते हुए बोला—माँ जी, जल्दी, जल्दी। छोटे बाबू बेहिसाब बिगड उठे हैं। आज भी इतनी देरी करनी चाहिए।

लेकिन बारूद म एक चिनगारी पड जाने से जो विप्लव कर बैठती है, नौकर की इस बात ने विजया के तन मन मे ठीक वही किया। उसे लगा पाँव से बालो की नोक तक जैसे समूचे म एक भीषण आग लहक उठी। लेकिन अचानक वह कुछ बोल न सकी, स्फटिक का टुकडा जैसे दोपहर की धूप म तेज बिखेरता रहता है, उसी प्रकार उसकी आँखो से केवल ज्वाला छिटकने लगी। उन आखो का ओर ताक कर कालीपदो डर से सिटपिटा गया। कुछ कहा ही चाहता था कि अपने को सम्हाल कर विजया बोली—तू नीचे जा कालीपदो। उसने अँगुली से नीचे की तरफ दिखा दिया।

इस घर म छोटे बाबू के मानी विलासबिहारी और बडे बाबू के मानी रासबिहारी है, विजया यह जानती थी। लेकिन ये बाप-बेटे यहाँ इतने बडे हो गए हैं कि उनके क्रोध की गुरुता आज नौकर चाकरो के सामने मकान की मालकिन तक को पार कर गई है—यह बात विजया को आज पहली बार मालूम

हुई। आज उसने साफ समझा कि इससे यही तथ्य निकलता है कि विलास ही यहा का वास्तविक स्वामी है और वह उसकी आश्रिता है, महज कृपा पर पलने वाली। इस तथ्य ने उसके मन की आग पर पानी का काम नही किया, यह कहना ही फिजूल है।

आध घण्टे के बाद जब वह हाथ मुँह धोकर, कपडे बदल कर पहुची, तो सब चाय पी रहे थे। उपस्थित लगभग सभी लोग उठ खडे हुए और उसके आँख-मुँह की शुष्कता को देखकर बहुत से अस्फुट कण्ठो के प्रश्न भी सुनाई पडे। लेकिन एकाएक विलासबिहारी के तीखे और कडवे स्वर मे सब डूब गये। चाय के प्याले को ठक से मेज पर रख कर वह बोल उठा—नीद अभी नही टूटती ता क्या था। तुम्हारे व्यवहार से मैं लगातार डिसगस्टेड होता जा रहा हूँ, यह जताए बिना मैं न रह सका।

खीझ जताने का अधिकार उन्हे बेशक है। लेकिन बाहर के इतने-इतने भले लोगो के सामने स्वामी की यह कत्त व्यपरायणता निहायत अभद्रता-सी ही लोगों को चकित और व्यथित कर गई। लेकिन विजया ने उसकी तरफ देखा तक नहीं। मानो कुछ हुआ ही न हो, इस भाव से सबको नमस्कार करके, जहा बूढ़े आचार्य दयाल बाबू बैठे थे, उधर को बढने लगी। बेचारे बूढ़े आदमी बडे कुण्ठित हो पडे थे। उनके पास जाकर विजया ने शान्त स्वर मे कहा—आपके चाय-पान मे कोई त्रुटि ता न हुई। मुझसे अपराध हो गया, आज जगने में मुझे देर हो गई।

स्नेहविगलित स्वर मे एक बारगी बेटा संबोधन करते वे बोले—नही बेटो, हमे कुछ भी असुविधा नही हुई। विलास बाबू, रामबिहारी बाबू ने कुछ उठा नही रखखा। लेकिन तुम कैसे तो दिख रही हो बिटिया, जी कुछ खराब तो नही ?

ये सब दिन कलकत्ते नहीं रहते, इसीलिए विजया पहले से इन्हें नहीं पहचानती थी। कल भी उसने इन्हें गौर करके नही देखा लकिन आज कमर म कदम रखते ही उसको सौम्य शात मूर्ति से मानो नितात अपने-से लगे थे। इसीलिए सबको छोडकर वह सीधे उन्ही के पास जा खडी हुई। उनके स्निग्ध कोमल स्वर से उसके अन्तर का दाह मानो आधा पानी हो गया और सहसा उसे

लगा, कैसे तो उसके पिता की आवाज का आभास इनके स्वर मे है।

दयाल एक कोच पर बैठे थे। बगल मे थोडी सी जगह थी। उन्होंने वह जगह दिखा कर कहा—खडी क्यों हो बिटिया, यहाँ बैठ जाओ। तबीयत तो खराब नहीं है?

विजया बगल म बैठ तो गई, पर जवाब न दे सकी। गदन घुमा कर दूसरो तरफ देखती रही। अपने आँसू को रोकना उसके लिए मानो क्रमश कठिन होता जा रहा था। बूढ़े ने फिर वही सवाल किया।

जवाब मे सिर हिलाकर विजया किसी कदर कह सकी—नहीं।

उसकी भर्राई आवाज बूढ़े से चूकी नहीं, वे जरा देर चुप रहे और बात को भाप कर मन ही मन जरा हँसे। जो इस घर के मालकिन की जगह को जरा देर पहले दखल किए बैठे थे, उन्होने अपनी प्रेमिका मकान मालिक को कडवा कुछ कहा, तो अनाडिया को वह जितना भी रूढ़ क्यों न जँचे, ऐसे नान-वृद्ध, जो यौवन के इतिहास को पढकर खत्म कर चुके हैं अगर इस पर मन ही मन जरा हँसे, तो उन्हे दोष नहीं दिया जा सकता।

अपनी बगल मे बैठी उस नवीना मानिनी को आश्वस्त होने देने का मौका देने के ख्याल से बूढ़े खुद ही धीरे धीरे बात करने लगे। इतनी कम उम्र मे सत्य धम के प्रति उनको अचल निष्ठा और प्रेम की प्रशसा के पुल बाँधने के बाद बोले—भगवान की दया से तुम लोगों के महान उद्देश्य को दिन दिन उन्नति हो, लेकिन बेटी, तुमने जिस मदिर की गाँव म स्थापना की, उसे कायम रखने के लिए काफी श्रम और स्वार्थत्याग को जरूरत है। मैं खुद भी तो देहात म रहता हूँ, मैंने देखा है, अभी भी यह धम देहाती समाज के रस से जसे जीना नही चाहता। इसीलिए, मेरा ख्याल है, अगर इसे जिला सको, तो देश की एक बहुत बडी समस्या का समाधान होगा। तुम लोगो के इस प्रयास को मैं क्या कह कर आशीर्वाद दूँ यही नहीं सोच पाता।

विजया की जुबान पर यह आ रहा था कि मदिर-प्रतिष्ठा का मुझे अब कोई उत्साह न रहा, इसको मुझे जरा भी सार्थकता नही नजर आती। लेकिन इस बात को वह पी गई। धीमे से पूछा—यह आप क्यो कह रहे है कि इससे एक बहुत बडी समस्या का समाधान होगा?

दयाल बोले, और क्या ? मेरा तो हार्दिक विश्वास है कि सिर्फ हमारा यही धर्म बंगाल के गांवों के कोटि कोटि कुसंस्कारों से मुक्ति दिला सकता है। लेकिन मुझे यह भी मालूम है कि जहां जिसका स्थान नहीं, जहां जिसकी जरूरत नहीं, वहां वह बच नहीं सकता। फिर भी जतन से कोशिशों से अगर एक को जिलाया जा सके, तो वह आशा भरोसा का केन्द्र नहीं होगा ? हमारे घरों के दोष-गुण की बात तुम खुद भी तो कुछ कम नहीं जानती बिटिया। अपने मन में डूब कर उन्हें जरा विचार तो देखो।

विजया ने और कुछ न पूछा। चुप होकर सोचने लगी। उसमें स्वभावतया ही स्वदेश की मंगल कामना थी, आचार्य की इस बात से वह आलोडित हो उठी। इस मंदिर प्रतिष्ठा के नाते एक बहुत बड़े नाम की आड़ से विलास उसके हृदय के दुखते स्थान पर ही बार बार चोट कर रहा था। वह वेदना से तड़फती थी और प्रतिकार का उपाय न था लिहाजा उसका मन इस व्यापार के खिलाफ ही गुस्से से अंधा हो उठा था। लेकिन दयाल ने जब अपनी प्रशांत मूर्ति और स्निग्ध कण्ठ से आह्वान से विलास की चेष्टा की इस दिशा विशेष की ओर नजर डालने का अनुरोध किया, तो सच ही वह मानों अपना भ्रम देखने लगी उसके जी में आया, शायद हो कि विलास वास्तव में ही हृदयहीन और क्रूर नहीं है, उसकी कठोरता, हो सकता है, धर्म की प्रबल निष्ठा का ही प्रकाश हो। मानव इतिहास में ऐसे उदाहरणों की तो कमी नहीं। उसे याद आया, उसने कहीं पढ़ा है कि संसार का हर महान कार्य किसी न किसी के लिए क्षतिकर होता है, जो ऐसे भार अपनी इच्छा से उठाते हैं, वे बहुतों के कल्याण के नाते मामूली क्षति पर ऐसा सोचने का मौका नहीं पाते। इसीलिए संसार में बहुत बार वे निर्दय और निष्ठुर समझे जाते हैं। सब दिन की शिक्षा और संस्कार से ब्रह्म-धर्म के प्रति अनुराग विजया को किसी से कम नहीं था। उसी धर्म के विस्तार से देश का इतना कल्याण हो सकता है, यह सुनकर उसका शिक्षित और सत्यप्रिय हृदय अपने आप विलास को क्षमा किए बिना न रह सका। और तो और वह अपने से ही कहने लगी, संसार में जो महान कार्य करने आते हैं उनके काम अक्षर-अक्षर अगर हम जैसे साधारण लोगों से न मिलें, तो उन्हें दोषी ठहराना ठीक नहीं, बल्कि अन्याय है, ऐसे अन्याय को अन्याय समझ कर

गुंजाइश नहीं दे सकती।

समय ज्यादा हो रहा था, सो एक-एक करके लोग उठने लगे थे। विजया भी उठ कर खड़ी हुई थी। रासबिहारी ने बेटे को ओट में ले जाकर क्या तो कहा। वह मानो इसी मौके के इंतजार में था, पास आकर बोला—तुम्हारी तबियत क्या सबेर से ही ठीक नहीं है? महज आध घंटा पहले भी वह इस सवाल को टाल कर चाहे सो कह कर चली जाती। लेकिन उसने सिर उठा कर देखा। बोली—नहीं, ठीक ही हूं। कल रात नींद नहीं आई—शायद इसीलिए अस्वस्थ सी लग रही हूं।

विलास का चेहरा खुशी से खिल उठा। ऐसे बहुत से लोग हैं, जो आघात के बदले आघात किए बिना नहीं रह सकते। अपना चाहे लाख नुकसान हो, फिर भी नहीं सह सकते। विलास ऐसों ही में से एक है। उसके प्रति विजया का आचरण जितना ही अप्रीतिकर होता जा रहा था, उसका अपना आचरण उससे भी ज्यादा निष्ठुर होता जा रहा था। घात प्रतिघात की यह आग जब हद को गुजरती तब पके बालों वाले अनुभवी पिता की रोक टोक, फटकार, सहनशीलता के परम लाभ और चरम सिद्धि का कोई असर अनभिज्ञ और ढीठ लड़के पर नहीं पड़ता। लेकिन विजया के एक ही कोमल वाक्य ने मानो विलास के स्वभाव को ही बदल दिया। अपने रूखे स्वर को भरसक मुलायम करके उसने कहा—तो फिर तुम अभी अभी धूप में मत निकलो। सवेरे-सवेरे नहा खा कर थोड़ा सो सको, तो अच्छा। ऋतु बदलने का समय है। तबीयत खराब न हो जाए। यह कह कर उसने चेहरे पर उत्कंठा जाहिर की, शायद अपने व्यवहार के लिए क्षमा मांगने को भी तैयार हुआ, पर उसके स्वभाव में यह बात थी ही नहीं, सो बिना कुछ कहे उन लोगों के पीछे तेजी से निकल पड़ा।

जब तक वह आंखों से ओझल न हो गया, विजया उसकी ओर ताकती रही। उसके बाद एक उसांस लेकर वह ऊपर के कमरे में चली गई। कुछ दिनों से एक अनबोलती पीर कांटे-सी सदा उसके मन में गड़ती रहती थी, आज अचानक ऐसा लगा, उसका मानो पता नहीं चल रहा है।

मास के बाद यथारीति ब्राह्ममंदिर की प्रतिष्ठा हो गई। अन्दर एक

खास जगह मे अगल बगल दो कुर्सियाँ रखी गई थी । उनमें से एक पर जब बडे समारोह के साथ विजया को बिठालाया गया तो यह समझने मे किसी को देर नही लगी कि दूसरी किसके इन्तजार मे खाली पडी है । पल भर के लिए विजया का हृदय हू हू जरूर कर उठा, पर जरा ही देर बाद जब विलास आकर उस पर बैठ गया, तो उस जलन को बुझते भी देर न लगी ।

१५

जल चुकी लौकी के नाचीज खोल की तरह उत्सव खत्म हो जाने पर ब्राह्ममंदिर भी लोगो के ध्यान से हट न जाए, इस आशका से विलासबिहारी उत्सव का किसी तरह से अन्त नहीं होने देना चाहता था । लेकिन जो आमन्त्रण पर आए थे, उन्हें आखिर घर द्वार है, काम धाम है पराये खर्च से खुशियाँ मनाने से ही नही चल सकता । इसलिए अन्त आखिर एक दिन करना ही पडा । उस दिन रासबिहारी ने छोटा सा भाषण देकर अन्त मे कहा, जिनकी असीम दया से हम बुतपरस्ती के घोर अँधेरे से प्रकाश मे आ सके उन एकमेवोद्वितीयम्, निराकार परब्रह्म के चरण कमलो में जिन्होने यह मन्दिर उत्सर्ग किया, उनका मगल हो । मैं हृदय मे प्रार्थना करता हू कि निकट भविष्य मे जो दो निर्मल नवीन जीवन सदा के लिए होगे—वह शुभ दिन देखने के लिए भगवान जिममे हमे जीवित रक्खें । और उन दो जीवनो की ओर देखकर बोले, बेटी विजया विलास तुम लोग इन्हे प्रणाम करो । आप लोग भी हमारे बच्चो को आशीर्वाद करें ।

विजया और विलास ने जमीन पर सिर टेक कर प्रवीण ब्राह्मणो को प्रणाम किया उन लोगो ने भी अस्फुट स्वर मे उन्हे आशीर्वाद दिया । उनके बाद सभा भग हुई ।

साँझ के बाद विजया जब घर लौटी, तो उसके मन मे कोई विराग, कोई चचलता नहीं थी । धर्म के आनन्द और उत्साह से उसका हृदय ऐसा

लबालब हो गया था कि वह अपने को ही कहने लगी, पार्थिव सुख ही सिर्फ सुख नहीं—बल्कि धर्म के लिए, औरों के लिए उसका त्याग ही एकमात्र श्रेय है।

विलास से मन का और कहीं मेल चाहे न हो, धर्म के बारे में कभी उनमें मतभेद न होगा, यह बात उसने जोर करके अपने को समझाया। बिस्तर पर पड़ी पड़ी बार बार कहने लगी, कि यह अच्छा ही हुआ कि विलास जैसे एक स्थिरसंकल्प स्वधर्मपरायण, कर्त्तव्यनिष्ठ आदमी से उसका जीवन सदा के लिए बंधने जा रहा है। भगवान उससे अपने अनेक काय करा लेंगे, इसलिए उसके मन की गति को इस तरह से बदल दिया है।

दूसरे दिन विलास ने सब से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि वे अगर महीने में कम-से-कम एक बार भी आकर मंदिर की मर्यादा बढ़ाएँ तो हम आजन्म अनुगृहीत रहेंगे। बहुत से लोग इस अनुरोध को स्वीकार करके ही घर लौटे।

रासबिहारी ने आकर कहा, बेटी विजया अगर अपने मन्दिर का स्थायित्व चाहती हो, तो दयाल बाबू को यहां रखने की कोशिश करो। विजया विस्मित और पुलकित होकर बोली—यह संभव है चाचा जी ? रासबिहारी हँसकर बोले—संभव न होता तो मैं कहता क्यों ? मैं इन्हें छुटपन से ही जानता हूं—एक तरह से बाल्यबन्धु ही समझो। हालत चाहे अच्छी न हो, आदमी नेक हैं। अपनी जमींदारी में कोई काम देकर सहज ही उन्हें रख सकती हो। मंदिर में भी कमरों की कमी नहीं, दो चार कमरों में मजे से सपरिवार रह सकते हैं।

इस बूढ़े सज्जन के प्रति सचमुच ही विजया को श्रद्धा हुई थी। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, यह सुनकर उस श्रद्धा में करुणा आ मिली। रासबिहारी के प्रस्ताव पर वह तुरंत सहमत हो गई। बोली—उन्हें यहीं रखिए, मुझे बड़ी खुशी होगी, चाचा जी।

वही हुआ। दयाल सपरिवार वहाँ आ गए।

दिन बीतने लगे। पूस बीता। आधा माघ आ पहुँचा। जमींदारी और मन्दिर का काम सुचारु रूप से चलने लगा—कहीं कोई विरोध या अशान्ति है,

ऐसी कल्पना मे भी किसी के न आया।

नरेन की कोई खबर नही। खबर होने की बात भी नही। दो दिन के लिए घर आया था, दो दिन के बाद चला गया। लेकिन विजया के जी मे एक पीडा सी होती, जब-जब उस माइक्रोस्कोप पर नजर पडती। और कुछ नही, सिर्फ यह कि उनके कष्ट के समय अगर उसकी कुछ ज्यादा कीमत दी गई होती। और एक बात याद करके वह जितनी ही चकित होती, उतनी ही कुंठित हो पडती। दो ही दिन के परिचय मे जाने कैसे उस आदमी से इतना स्नेह हो गया था, गनीमत कि जाहिर न हुआ। वरना झूठा मोह आखिर एक दिन झूठ मे खो जाता—लेकिन जीवन भर शर्म की हद नहीं रह जाती। इसलिए दो-दिन की स्नेह-ममता के इस पात्र की जभी याद आ जाती, जी जान से वह उसे मन से दूर ढकेल देती। इस तरह माघ भी निकल गया।

फागुन की शुरूआत होते ही एकाएक गर्मी पड गई और बुखार फैलने लगा। दो दिन से दयाल बाबू बुखार के शिकार थे। सुबह उन्हे देखने जाने के लिए एक बारगी तैयार होकर ही विजया नीचे उतरी थी। दरबान कन्हैयासिंह अपनी लाठी ले आने गया था, इसी फाक मे विजया बैठी एक प्याला चाय पी रही थी।

नमस्का—र।

चौंक कर विजया ने ताका। देखा, नरेन अन्दर दाखिल हो रहा है।

उसके हाथ का प्याला हाथ मे ही रह गया। एकटक देखती ही रह गई वह। न तो नमस्कार किया, न बैठने को कहा।

नरेन ने एक कुर्सी से अपनी लाठी टिका दी और दूसरी कुर्सी खीच कर बैठ गया, बोला, अपना भी यह काम अभी निबटा नही— एक प्याला चाय और लाने का हुक्म फरमाइये तो।

'तुरन्त'—कह कर विजया प्याला रखकर कमरे से बाहर चली गई। लेकिन कालीपदो को चाय का कहकर तुरन्त ही वह वापिस न आ सकी। ऊपर जाने वाली सीढी की रेलिंग थामे चुपचाप खडी रही। उसका कलेजा भारी आँधी आए समुद्र जैसा उन्मत्त हो उठा। किसी भी वजह से मनुष्य का हृदय ऐसा भी डोल उठता है, वह जानती ही न थी, और यह साफ समझ रही

थी कि जब तक यह आन्दोलन शात नहीं होता, सहज भाव से किसी से बात करना सम्भव नही। पाँच छ मिनट वैसी ही चुप खडी रही वहा, जब वह देखा कि कालीपदो चाय लेकर जा रहा है, तो वह भी उसके पीछे-पीछे कमरे मे दाखिल हुई।

कालीपदो के लौट जाने के बाद विजया की ओर देखकर नरेन ने कहा —आप भीतर से आजिज़ हो गई हैं। कहीं जा रही थी और इस बीच टपक कर मैंने अडचन डाल दी। मगर मैं पाच छ मिनट से ज्यादा आपका वक्त न लूगा।

विजया बोली, अच्छा, पहले आप चाय पीजिये। और इतने में पच्छिम तरफ वाली खिडकी पर नजर पडते ही वह हैरान रह गई। बोली—यह खिडकी कौन खोल गया।

नरेन बोला—कोई नही, मैं ?

कैसे खोला इसे ?

जैसे खोलते हैं लोग। खींचकर। कोई कसूर बन पडा।

विजया सिर हिलाकर बोली—नहीं। कुछ देर वह उसकी लम्बी पतली उँगलियो को देखती रही। कहा, आपकी उँगलियाँ क्या लोहे की है ? वह खिडकी जब बन्द रहती है, तो बिना पीछे से धक्का दिए खींच कर खोले, ऐसा आदमी मैंने नही देखा।

सुनकर नरेन जोरो से हस पडा। कमरा गूँज उठा। वही हँसी। याद आते ही विजया के रोऐं खडे हो गए। हँसी रुकी तो नरेन ने सहज भाव से कहा—सच ही मेरी अँगुलियाँ बडी सख्त है। कसकर दबा दूँ तो जिस किसी का भी हाथ शायद टूट जाय।

विजया हसी दबाकर गम्भीर होकर बोली—आपका सर उससे भी सख्त है। टक्कर मारने से

बात खत्म होने से पहले ही नरेन फिर उसी प्रकार जोरों से हँस पडा। इस आदमी की हँसी सुबह की किरन-सी इतनी मीठी, ऐसी उपयोग की चीज है कि हर्गिज लोभ नही रोका जा सकता।

जेब से दो सौ रुपए के नोट निकाल कर मेज पर रखते हुए नरेन

बोला, इसीलिए आया था। मैं धोखेबाज हूं, ठग हूं, जाने और क्या क्या गालियाँ आपने कहला भेजी थी इन थोड़े रुपयों के लिए। ये रहे आपके रुपये, मेरी चीज मुझे दे दीजिए।

विजया का चेहरा एकाएक आरक्त हो उठा। लेकिन तुरन्त अपने को संभाल कर बोली—और क्या क्या कहला भेजा था, कहिए तो।

नरेन बोला, उतना याद नहीं मुझे। उसे मगवा दीजिए। मैं साढ़े नौ बजे की ही गाड़ी से कलकत्ते चला जाऊंगा। हाँ, मुझे कलकत्ता में ही एक अच्छी नौकरी मिल गई है—अब उतनी दूर न जाना होगा।

विजया का चेहरा दमक उठा। बोली—खुशकिस्मत हैं आप।

नरेन बोला—हां। लेकिन मुझे ज्यादा समय नहीं। नौ बज रहे हैं।

पलक मारने भर की देर में विजया के चेहरे की दमक बुझ गई। नरेन ने लेकिन देखा भी नहीं। बोला—मुझे तुरन्त जाना है, वह मगवा दीजिए।

विजया ने उसकी ओर नजर उठाकर देखते हुए कहा—आपसे क्या यही बात हुई थी कि चूंकि कृपा करके आप रुपये ले आए हैं, इसलिए आपको तुरन्त वापिस दे देना पड़ेगा?

नरेन शर्मिन्दा होकर बोला—बेशक यह नहीं, मगर आपको उसकी जरूरत भी क्या?

आज नहीं है, इसलिए कभी नहीं होगी, यह किसने कहा?

सिर हिलाकर नरेन दृढ़ता से बोला—मैं कहता हूं। वह चीज आपके किसी काम न आयेगी। लेकिन मेरे

विजया ने जवाब दिया—लेकिन बेचते वक्त जो आपने कहा था कि वह मेरे बड़े काम की है? मैंने कहला भेजा कि मुझे ठग गये, इसलिए आप नाराज हो रहे हैं? उस समय और, और अब और बात।

दाम से नरेन एकबारगी फीका पड़ गया। कुछ देर चुप रह कर बोला—देखिये, तब मैंने सोचा था, ऐसी चीज को आप काम में लायेंगी, यों डाल नहीं देंगी। अच्छा, आप तो सामान बंधक रखकर भी रुपये देती हैं। इस

भी वही क्यों नही समझ लें। मैं रुपयो का सूद दे रहा हूँ।

विजया बोली—कितना सूद देंगे ?

नरेन बोला—जो वाजिब हो, देने को तैयार हूँ।

विजया ने गर्दन हिलाकर कहा—लेकिन मैं तैयार नहीं हूं। मैंने कलकत्ते मे खोज पूछ कराके देख लिया है, इसे मैं मजे मे चार सौ रुपये में निकाल सकती हूँ।

नरेन सीधे उठकर खड़ा हो गया। बोला—ठीक है, वही करें आप—मुझे कोई जरूरत नही। जो दो सौ का चार सो लेना चाहें, उसे मैं कुछ भी नही कहना चाहता।

मुँह झुकाकर विजया ने जी-जान से हँसी रोक कर जब सिर उठाया, तो केवल इस आदमी को छोड़कर ससार मे शायद और किसी के आगे भी वह आत्म-गोपन नही कर पाती। लेकिन नरेन का उधर ध्यान ही न था। उसने तीखे स्वर मे कहा—मैं जानता होता कि आप एक शाइलक हैं, तो हर्गिज नही आता।

विजया भलेमानस-सी बोली—कर्ज के चलते जब आपका सवस्व हजम कर गई तब भी नही सोचा ?

नरेन बोला—नही, क्योकि उसमे आपका हाथ नही था। यह काम आपके और मेरे पिता कर गये थे। इसके लिए हम जिम्मेदार नही है। खैर, मैं चला।

विजया बोली—खाना खाकर नही जायेंगे ?

उद्दड की नाई नरेन बोला—नही, खाने के लिए नही आया।

विजया शान्त भाव से बोली—अच्छा आप तो डाक्टर है। नब्ज देखना जानते है ?

अबकी उसके होठो पर हँसी की रेखा पकडा गई। नरेन क्रोध से दहक उठा। बोला—मैं क्या आपके मजाक का पात्र हूँ ? रुपया आपको बहुत बहुत रह सकता है, लेकिन रुपये के जोर से किसी को यह अधिकार नहीं आ जाता। आप जरा सोच समझ कर बोलें, और उसने अपनी छड़ी सम्भाल ली।

विजया बोली—नही तो आपके बदन मे ताकत है और हाथ में छड़ी ?

अपनी छड़ी फेंक कर नरेन हताश हो कुर्सी पर बैठ गया—छि आप तो जो मुँह में आ रहा है, वही कह रही हैं। आपसे पार पाना मुश्किल है। लेकिन याद रहे।—कह कर वह अपने को और नही सम्भाल सकी। हँसी रोकती हुई तेजी से चली गई वहा से।

सूने कमरे मे नरेन हतबुद्धि-सा कुछ देर बैठा रहा। आखिर हाथ में अपनी छड़ी लेकर खड़ा हुआ कि विजया धीरे से कमरे मे आई। बोली—आपकी ही वजह से जब देर हो गई, तो आपको भी जाने न दूँगी। आप नब्ज देखना जानते है, जरा मेरे साथ चलिये।

जाने की बात का नरेन को यकीन न आया। तो भी पूछा—नब्ज देखने के लिए कहा जाना होगा ?

विजया उसकी ओर देखकर गम्भीर भाव से बोली—यहा कोई अच्छा डाक्टर नही। नये आचार्य होकर जो हमारे यहाँ आए हैं—उन्हे मैं बहुत श्रद्धा करती हूँ। दो दिन से उन्हें बहुत बुखार है, चलिए, जरा उन्हें देख लीजिए।

अच्छा, चलिए।

विजया बोली—तो जरा रुक जाइए। वह लडका जो है, परेश, उसे तो आप पहचानते हैं, परसों से उसे भी बुखार है। उसे ले आने के लिए उसकी मा को कह आई हूं।

इतने मे परेश को कमरे की तरफ भेजती हुई परेश की मा दरवाजे के पास आकर खडी हुई। नरेन ने एक निगाह उसे देख भर लिया और कहा, अपने बच्चे को अब ले जाओ, देख लिया।

परेश की माँ और विजया दोनों ताज्जुब में पड गई। माँ ने आरजू करके कहा—बदन मे बेहद दर्द है हुजूर, जरा नब्ज देख कर कोई दवा देते—

दर्द को मैं जानता हूँ। बच्चे को ले जाओ। हवा मत लगाना। दवा मैं देता हूँ।

माँ जरा दुखी होकर बेटे को लिवा ले गई। विजया के विस्मित मुखड़े

की तरफ देखकर नरेन बोला—चेचक इधर जोर पकड़ रहा है। इस लड़के के चेहरे पर भी मैंने चेचक के लक्षण साफ देखे। जरा सावधानी से रखने को कह देंगी। विजया का चेहरा स्याह हो गया। चेचक ! चेचक क्यों होगा ?

नरेन बोला—क्यों होगा, यह लम्बी दास्तान है। लेकिन हुआ है आज साफ झलक नही रहा है, लेकिन कल उसकी तरफ देखते ही पता चलेगा। मैं समझता हूं, आपके आचार्य महोदय को भी अब देखने जाने की खास जरूरत नहीं—उनकी बीमारी का भी कल ही पता चलेगा।

डर से विजया का सारा शरीर झिमझिमा उठा। वह बेदम बेजान-सी एक कुर्सी पर बैठ गई और अस्फुट स्वर में कहा—मुझको भी जरूर चेचक होगा नरेन बाबू, कल रात मुझे भी बुखार हुआ था, बदन में जोरों का दर्द है।

नरेन हँसा। बोला—दरअसल जोरों का दर्द नही है, जो जोरों का है, वह है डर आपका। और जरा बुखार ही आ गया तो क्या ? आस पास चेचक फैला है, इसलिए गांव भर को चेचक ही होगा, इसके क्या मानी !

विजया की आँखें छलछला उठीं। बोली—और होगा, तो मेरी देख-भाल कौन करेगा ? मेरा है कौन ?

नरेन फिर हँसा। बोला—देखने वाले बहुतेरे मिल जायेंगे, इसकी फिक्र न करें—मगर आपको होगा कुछ नही।

हताश-सी सिर हिलाकर विजया बोली—न हो कुछ, वही ठीक है। लेकिन कल रात मुझे काफी बुखार था। फिर भी सुबह उसे भुला कर दयाल बाबू को देखने जा रही थी। अभी भी थोड़ा थोड़ा बुखार है देखिए। यह कह कर उसने अपना दाहना हाथ उसकी तरफ बढ़ा दिया। नरेन करीब गया। अपने सख्त हाथों मे उसकी कोमल कलाई लेकर जरा देखा और धीरे धीरे छोड़-कर बोला—आज कुछ खाइए मत। चुपचाप लेट रहिए जाकर। कोई डर नहीं, कल-परसों मैं फिर आऊँगा।

आपकी कृपा—कहकर विजया आँखें बन्द करके चुप हो रही। पर यह बात नरेन के हृदय मे तीर की तरह जाकर चुभी। जवाब में उसने कुछ कहा जरूर नही, लेकिन अपनी लाठी सम्भाल कर जब वह घर से बाहर निकल पड़ा, तो इस डरी हुई नारी की असहाय दया-याचना उसके बलवान पुरुष हृदय के

इस छोर से उस छोर तक को मथने लगी ।

दूसरे दिन कामो की भीड मे वह किसी भी प्रकार से कलकत्ता नही छोड सका । लेकिन उसके अगले दिन सुबह नौ बजे वह गाँव आ पहुचा । घर मे कदम रखते ही कालीपदो ने दौड कर खबर दी, मा जी का बडा बुखार है बाबूजी, आप सीधे ऊपर चलिए ।

नरेन जब कमरे मे पहुचा, विजया जोरो के ज्वर मे पडी तडप रही थी और कोई एक प्रौढ़ा स्त्री उसके सिरहाने बैठ कर पखा झल रही थी । और पास ही कुर्सियो पर बाप बेटे, रासबिहारी और बिलासबिहारी अजीब गभीर मुँह किए बैठे थे । दोनो मे से किसी का भी हृदय डाक्टर के आने से खुशी और उम्मीद से खिल नही पडा, यह न भी कहें तो हर्ज नही ।

विलास ने बिना किसी भूमिका के सीधे पूछा—आप शायद परसो इन्हे चेचक का खतरा बता गए हैं ?

इतनी बडी मिथ्या कि सहसा कोई जवाब नही दिया जा सकता । लेकिन यह सुनकर विजया ने लाल लाल आँखो से उधर ताका । पहले तो वह मानो समझ नही पाई, फिर दोनो हाथ बढा कर बोली—आइए ।

बैठने की और कोई जगह यहाँ नही थी, सो नरेन उसके बिछावन पर ही एक ओर बैठ गया । तुरत विजया ने उसके दोनो हाथ जोर से पकड कर कहा—कल आये होते, तो मुझे इतना बुखार नही आया होता—मैं तमाम दिन राह देखती रही ।

नरेन डाक्टर ठहरा—उसे समझते देर न लगी कि ज्वर की उग्रता शराब के नशे की नाई बहुत-बहुत अजीबोगरीब बातें आदमी के भीतर से खीच कर निकाला करती है, अच्छी हालत मे उनका अस्तित्व न तो जबान पर, न मन मे, कही नही रहता । किन्तु करीब ही बैठे अभागे बाप-बेटे के सिर के बाल तक गुस्से के मारे खडे हो गये । नरेन ने दिलासा देते हुए प्रसन्न मुख से कहा घबराहट काहे की, दो ही दिन मे बुखार ठीक हो जायगा ।

उसके हाथ को एक बारगी अपनी छाती पर खीच कर विजया करुण स्वर मे बोली—लेकिन यह कहो कि जब तक मैं चगी नही हो जाती, तुम कही नही जाओगे । तुम चले जाओगे तो मैं नहीं बचूँगी ।

जवाब देने के लिए नरेन ने आखें उठाईं कि दो जोड़े भयकर आखों से उसका मुकाबला हो गया। देखा, बहुत करीब आए बेखौफ शिकार पर टूट पड़ने के पहले भूखा बाघ जैसे तकता है, ठीक उसी तरह दो जली आखों से विलासबिहारी उसे ताक रहा था।

नरेन अवाक् देखता रह गया, विजया के सवाल का जवाब देते न बना। आंखो की हिंसक नजर महज आदमी क्यों, बहुत से जानवर तक समझ सकते हैं। लिहाजा आदमी यह चाहे जितना भी भोला हो, दुनिया का तजुर्बा उसे चाहे जितना कम हो यह बात वह लमहे में ताड गया कि कुर्सी पर बैठे बाप बेटे की निगाह मे और जो भाव चाहे हो, उसमे हृदय की प्रीति तो नहीं झलकती है। यह पता उसे था कि ये लोग उस पर प्रसन्न नहीं हैं। जिस दिन विजया को वह माइक्रोसकोप दिखाने आया था, बहुत सी बातें अपने कानों सुन गया था। और रासबिहारी जिस दिन उसे खुद दाम देते गये थे, उस दिन भी हितोपदेश के बहाने बूढे ने कुछ कम खरा-खोटा नही सुनाया। लेकिन वास्तव मे जब उसने धोखा नहीं दिया, वह चीज दो के बजाय चार सौ रुपये ला सकती है—कसौटी हो चुकी है, तब भी इन्हे नाराजगी क्यो है, यह वह सोच नही सका। फिर चेचक का खतरा बताना। उसने तो डराया नही, बात बल्कि ठीक उल्टी। यह झूठ किसी दूसरे ने फैलाया या विजया ने खुद ऐसा कहा, यह ठीक कर पाने के पहले ही विलासबिहारी और एक बार चीख उठा। नौकर कालीपदो ने बहुत सम्भव उत्सुकता से ही परदे को जरा खिसका कर अन्दर झाका था कि नजर पडते ही वह जामे से बाहर हो गया—अबे सूअर यहाँ, एक कुर्सी ले आ।

घर के सभी चौंक उठे। कालीपदो ने गालियां तो खूब समझी, पर घबराहट मे वह यह नही समझ पाया कि करना क्या है, सो वह कमरे मे

आकर कभी इधर, कभी उधर जाने लगा। बूढ़े रासबिहारी ने अपने को सम्भाल लिया था गम्भीर होकर उन्होने कहा—कालीपदो, उस कमरे से एक कुर्सी ले आओ बाबू के लिए। कालीपदो तेजी से चला गया। रासबिहारी ने लडके की तरफ मुडकर अपने शात और उदार स्वर मे कहा, रोगी का कमरा—ऐसा बेताब मत हो जाओ विलास। टेंपर लूज करना किसी भले आदमी को नहीं मोहता।

उद्धत की नाई विलास बोला—इसमे कोई टेंपर लूज न करे तो क्या करे? न कहना न सुनना, हरामजादा नौकर एक ऐसे असभ्य को कमरे मे ले आया, जिसे औरतो की मर्यादा रखने तक की तमीज नही।

अचानक जोरो के किसी धक्के से जैसे शराबी का नशा फट जाता है, वैसे ही विजया के बुखार का घोटा जाता रहा। उसने चुपचाप नरेन का हाथ छोड दिया और करवट बदल कर दीवार की तरफ को मुँह फेर लिया।

कालीपदो एक कुर्सी ले आया। नरेन बिस्तर पर से उठ कर उस पर जा बैठा। रासबिहारी से विजया के चेहरे का भाव ताडने मे चूक नहीं हुई। वे जरा हँस कर अपने बेटे से ही बोले—मैं सब समझता हूँ विलास। ऐसी हालत मे तुम्हारा नाराज होना अस्वाभाविक नही बल्कि स्वभाविक ही है, मैं मानता हूँ, लेकिन तुम्हें यह सोचना भी लाजिम था कि सब कोई जान कर ही अपराध नही करते। सब तरह के तौर तरीके आचार-व्यवहार अगर सभी कोई जानते, तो फिर चिन्ता किस बात की थी। इसीलिए नाराज होने के बजाय शान्ति से किसी की गलती को सुधार लेना चाहिये।

यह गलती किस की थी, यह समझने मे किसी को देर नही लगी। विलास बोला, नही पिताजी, ऐसा इमपर्टिनेंस बर्दास्त नही होता। उसके सिवाय यहाँ के नौकर जैसे अभागे हैं, वैसे ही बदजात। कल ही सबको निकालता हूँ, फिर चैन लूँगा।

रासबिहारी फिर हँसे और स्नेह से झिडकते के ढ ग पर अबकी शायद घर की दीवारो को सुना कर बोले—इसका जी जब तक खराब रहता है, तो क्या जो बोल बैठेगा कुछ ठीक नहीं। और दोष लडके को भी क्या दूँ, मैं बूढ़ा आदमी, तबीयत खराब की सुनकर मैं खुद कितना चचल हो पडा। घर में

ही एक को चेचक निकला, ऊपर से ये हजरत खतरा बता गए।

अब तक नरेन चुप था। अब की उसने टोककर कहा—जी नहीं, मैंने हरगिज खतरे की बात नहीं कही।

विलास ने जमीन पर अपने एक पैर को पटक कर कहा—आप जरूर कह गए हैं। कालीपदो गवाह है।

नरेन बोला—कालीपदो ने गलत सुना है।

जवाब में जाने विलास और क्या गजब ढाने जा रहा था। पिता ने रोकते हुए कहा—आप रुको भी विलास। जब ये इनकार कर रहे हैं, तो क्या कालीपदो का एतबार करना पड़ेगा? जरूर ये सच बता रहे हैं।

विलास फिर भी कुछ कहने जा रहा था। कटाक्ष से उसे रोक कर, रासबिहारी ने कहा—इस मामूली-सी बीमारी में ही दिमाग से हाथ मत धो, बैठो विलास, स्थिर रहो। मंगलमय भगवान हमारी परीक्षा के लिए ही हमें आफ्तों में डाला करते हैं, विपद में सबसे पहले तुम लोग इसी बात को क्यों भूल जाते हो, मैं तो समझ नहीं पाता।

थोड़ी देर स्थिर रह कर फिर बोले—और अगर बीमारी के बारे में गलत कुछ कह ही दिया हो, तो क्या हुआ? एक से एक काबिल और विचक्षण डाक्टरों को ऐसा भ्रम होता है, ये तो अभी बच्चे हैं। इतना कहकर उन्होंने नरेन की ओर मुखातिब होकर कहा, खैर, तो आप बुखार तो बहुत मामूली ही बता रहे हैं? चिंता की कोई बात नहीं, यही तो आपकी राय है?

नरेन अब तक काफी अपमान चुपचाप सहता रहा था, अब जरा टेढ़ा जवाब दिए बिना उससे न रहा गया बोला, मेरे कहने से क्या आता-जाता है? मुझ पर निर्भर तो करते नहीं। अच्छा हो किसी काबिल विचक्षण डाक्टर को दिखाकर उन्हीं की राय लें।

बात में चिकोटी चाहे जो हो, यह जवाब देने का अधिकार उसे था। लेकिन विलास बिल्कुल उछल पड़ा—हमलावर की तरह चीख उठा—किस से बात कर रहे हो, यह सोच कर बात करना, कहे देता हूं। और कहीं होता तो तुम्हारे इस व्यंग करने का

शुरू से ही बेवजह बेवजह झगड़े पड़ने की इसकी जी-जान से कोशिश

देख नरेन अचरज से ठक रह गया। लेकिन क्या,किसलिए—उसके व्यवहार में कहाँ ऐसी त्रुटि हो रही है, इसे वह समझ नहीं सका। हकीकत में बात यह थी कि उस आदमी के असल में जलन कहा थी, नरेन को आज भी यह मालूम न था। विजया के यहाँ आते ही गाव के रोगी पडोसियो की टोली जब विजया और विलास के भावी सबध की चर्चा मे अपने समय का सदुपयोग किया करती थी, तो दूसरे गाव का रहने वाला यह नया वैज्ञानिक अटूट ध्यान लगाकर जीवाणु-कीट के सम्बन्ध निरूपण मे ही जुटा रहता, गाव की जनश्रुति उसके कानो तक पहुचती ही नही। उसके बाद ब्राह्ममन्दिर की स्थापना के समय जब यह रिश्ता पक्का होकर कही फैलने को बाकी न रहा, तो वह कलकत्ते जा चुका था। आज बाप बेटे का बातचीत के ढग मे कभी-कभी क्या तो एक अनिश्चित और अस्पष्ट पीडा भी उसे झलक रही थी, लेकिन सोच विचार कर उसे स्पष्ट करने का समय या प्रयोजन, उसे कुछ भी न था।

ऐसे ही समय विजया ने इधर को मुह फेरा। नरेन की ओर जरा देर अपनी पीडित आखे रोपकर बोली—मैं जब तक जिन्दा रहूँगी आपकी कृतज्ञ रहूँगी। लेकिन इन्होंने जब दूसरे डाक्टर से मेरा इलाज कराने का तै किया है, तो आप नाहक ही अपमान न सहे। लौटते हुए लेकिन दयाल बाबू को जरा देख जायेंगे, सिर्फ मेरी यह आरजू रक्खें। और किसी जवाब का बिना इन्तजार किए उसने फिर मुँह फेर लिया। रासविहारी बहुत पहले ही असली बात भाँप गए थे। तुरत बोल उठे—अजीब बात। तुमने जिसे बुलवा भेजा है, किसकी मजाल है उसका अपमान करे?

उसके बाद बेटे की तरह-तरह से लानत मलामत करके बार-बार यही कहने लगे कि बीमारी को सख्त समझ कर उत्कठा से विलास के भले-बुरे का ज्ञान जाता रहा है और साथ ही एकमात्र अद्वितीय निराकार परब्रह्म की इच्छा के बारे मे बहुत-सी आध्यात्मिक और गूढ तत्वो का मर्म बता दिया।

नरेन कुछ न बोला। पिता पुत्र के पास से तत्वकथा और अपमान का बोझा लेकर चुपचाप दोनो कन्धो पर लटका कर उठ खडा हुआ और अपनी छडी तथा बैग उठा कर उसी तरह चुपचाप निकल गया।

रासबिहारी ने पीछे से आवाज दी, नरेन बाबू आपसे कुछ जरूरी

बात करती है। कहकर अपने बेटे को अप्रतिद्वन्दी, एकमात्र और अद्वितीय रूप मे विजया के कमरे मे अधिष्ठित करके वे नरेन के पीछे-पीछे नीचे उतर गये।

वगल के एक कमरे मे नरेन को बिठाकर भूमिका के बहाने वे बोले, दस आदमी के सामने तुम्हे बाबू ही कहूं या जो कहूं बेटे लेकिन मैं यह नही भूल सकता कि तुम अपने जगदीश के बेटे हो। वनमाली और जगदीश, दोनो स्वर्ग गए, एक मैं ही रह गया हूं लेकिन हम तीनो क्या थे, यह आभास मैंने तुम्हे उसी दिन दे दिया था—मेरा कलेजा मानो फटने लगता है।

वास्तव म उस दिन जब माइक्रोस्कोप का दाम देन गए थे, उन्होने बहुत कुछ कहा था। नरेन चुप रहा।

अचानक मानो उसी दिन की बात आ गई, बोले—उस काम की चीज को बच देने के कारण मैं सचमुच ही तुम पर खीझ उठा था नरेन। जरा हँसकर बोले—देखो बेटे, यह खीझ उठा कहना बडा रूढ है। नही खीझा कहना ही दुनियादारी के लिहाज से ठीक होता है, कहने और सुनने सब तरह से खतरे से खाली—लेकिन छोडो भी। उन्होंने निश्वास त्याग और मानो बहुत कुछ आत्मगत भाव से ही कहने लगे—जो मेरे बस का नही, उस पर दु ख करना फिजूल है। कितना का अप्रिय बनता हू, लेकिन लोग गाली देते ह दोस्त कहते ह, ठीक है, झूठ जब कभी तुमसे बोलते न बना रासबिहारी, तो झूठ बोलने को हम कहते भी नही, लेकिन जरा घुमा फिरा कर कहने से ही अगर गाली गुफ्ते से छुटकारा मिले तो वही क्यो नही करते ? सुनकर मैं अवाक होकर सिर्फ सोचता रह जाता हू बेटे कि जो हुआ नही, उसे बनाकर, घुमा-फिराकर कहा कैसे जाय ? ये मेरा भला ही चाहते हैं, यह समझता हू मैं, लेकिन मगलमय ने जिस शक्ति से मुझे वचित किया है, वह असाध्य साधन मैं करू भी तो कैसे ? खैर, अपने बारे म कहना सुनना मुझे बिल्कुल पसन्द नही —इससे बडी खीझ ह मुझ। पीछे तुम्हे दु ख हो, इसीलिए इतना कह रहा हूँ। इसके बाद कुछ देर छत की लकडियो को देखते रहे और फिर बोले—और एक बात बता दूँ, आजीवन यही दुनियाँ मे ही रहा, बाल भी पका लिए ठीक है, लेकिन क्या कहने से, क्या करने से यहाँ सुख सुविधा मिलती है, यह

बात आज भी इसी पकी खोपडी मे न समाई। वरना यह कहकर आज मैं तुम्हे पीडा क्यो पहुचाता कि मैं तुमसे नाराज हुआ था ?

नरेन ने विनय के साथ कहा, तो सत्य है, वही कहा है—इसमे दु ख होने का क्या है ?

रासबिहारी गर्दन हिलाते हुए बोले—ऊँहू, यह मत कहो नरेन, कडवी बात जी पर जरूर चोट करती है। जो सुनता है उसे तो चोट लगती ही है, जो कहता है, उसे भी लगती है। जगदीश्वर !

नरेन सिर झुकाए चुप रहा। रासबिहारी उठते हुए धर्म के उच्छास को सयत करके कहने लगे, लेकिन उसके बाद चुप न रहा गया। सोचा, यह क्या ! बेचारा बडे दु ख से अपने काम की चीज को बेच गया है। कीमत उसकी कुछ भी चाहे हो, जब जबान दे दी गई है, तो सोचना कैसा, दाम देने मे भी देर नहीं होनी चाहिये। मैंने मन मे सोचा, बेटी विजया जब जी मे आवे, जितने दिनो मे जी चाहे रुपया दिया करें, मगर मैं जाकर रुपये दे आऊँ। जब उन्हीं रुपयों से उन्हें विदेश जाना है, फिर तो एक भी दिन की देर ठीक नहीं।

उस समय की कडवी बातों को याद करके नरेन ने पूछा—उसकी क्या दाम देने की इच्छा नही थी ?

बूढे न गम्भीर होकर कहा, यह बात तो मुझे नहीं लगी। लेकिन यो समझो कि—न, रहने दो कहकर वे मौन हो गए।

चार सौ रुपये मे उसके बिक जाने वाली बात नरेन की जीभ पर आ गई, लेकिन कँमी तो एक तकलीफ होने के कारण वह जिस विषय में कुछ न बोला।

रासबिहारी ने अब काम की बात छेडी। वह आदमी पहचानते थे। नरेन की आज की बातचीत और सलूक से उन्हे पक्का सदेह हो गया था कि वह असली बात अभी तक नहीं जानता है और ऐसे अनमने तथा उदासीन स्वभाव के लोगो को जब तक आँखो मे उँगली गडा कर दिखा नही दिया जाता तो खुद से छानबीन करके भी ये कुछ जानना नहीं चाहते। बोले—विलास के व्यवहार से आज मैंने जितना दु ख उतनी ही लज्जा का अनुभव किया। उस माइक्रोस्कोप की ही बताऊँ, विजया अगर उसकी राय लेकर खरीदती तो कोई

बात ही नहीं उठती। तुम्हीं बताओ, यह उसका फर्ज नहीं था क्या?

विजया का फर्ज ठीक ठीक समझ न पाकर नरेन जिज्ञासु सा देखता रहा।

रासविहारी बोले, उसके बीमार होने की खबर से ही विलास कैसा उत्कण्ठित हो उठा है, यह तुमसे छिपा नहीं है। होना वाजिब ही है—बुरा-भला सबकी जिम्मेवारी तो उसी के मत्थे है। इलाज और डाक्टर, ठीक करना तो उसी का काम है! उसकी राय के बिना तो कुछ भी नहीं हो सकता। आखिर विजया ने खुद भी इस बात को समझा, लेकिन दो दिन पहले यह सोचती तो यह अप्रिय घटना नहीं घट पाती। निरी बच्ची तो है नहीं—सोचना उचित था।

सोचना क्यों उचित था, तब तक भी इसे न समझ पाकर नरेन बूढ़े की बात पर हामी न भर सका। लेकिन उसके भीतर उथल-पुथल सी होने लगी। इतने पर भी समझ लेने जैसी बात उसके मुँह से न निकली। वह सिर्फ अपनी शंकित आँखें बूढ़े की ओर रखकर देखता रहा।

रासबिहारी बोले, लेकिन बेटे, विलास के मन की अवस्था समझकर अपने मन मे कोई ग्लानि मत रखना। मेरा एक और अनुरोध है नरेन, इनका ब्याह तो बैसाख मे ही होगा, अगर तुम्हारा कलकत्ते ही रहना हो तो उस मंगल कार्य मे शामिल होना होगा, यह कह रखता हूँ मैं।

नरेन कुछ बोल न सका। गर्दन हिलाकर सिर्फ 'अच्छा' कहा।

फिर तो रासबिहारी पुलकित हृदय से बहुत-सी बातें कहने लगे। कहने लगे यह विवाह मंगलमय की इच्छा है, वर-कन्या के जन्मकाल से ही यह तै था और इस सिलसिले मे विजया के परलोकवासी पिता से उनकी क्या क्या बातें हुई थी आदि बहुत-बहुत पुराना इतिहास सुनाकर सहसा बोल उठे—अच्छा, कलकत्ते ही रहोगे? सुविधा कर लेने की है गुंजाइश?

नरेन बोला—हां। विलायती दवा की एक दूकान मे छोटी सी जगह मिल गई है।

रासबिहारी खुश होकर बोले—बहुत खूब! दवा की दुकान कुछ पैसा कर पाए तो बन जाओगे।

नरेन इस इशारे मे पास भी न फटका। बोला—जी हाँ—सुनकर रासबिहारी उत्सुकता को दबा न सके। जरा आगा-पीछा करके पूछा—तो तनखा क्या मिल जाती है ?

नरेन बोला—बाद मे शायद कुछ ज्यादा दें- अभी सिर्फ चार सौ रुपये मिलते हैं।

चार सौ ! अपने फीके चेहरे पर कपाल तक आँखें चढ़ा कर रासबिहारी बोले—बहुत खूब ! वाह ! सुनकर बड़ी खुशी हुई।

दिन चढ़ता जा रहा था। नरेन उठकर खड़ा हुआ। दयाल बाबू को चेचक के दो एक दाने दिखाई पड़े थे। उन्हें देखते हुए जाना था। पूछा-अच्छा वह परेश कैसा है, बता सकते हैं ?

रासबिहारी ने बेखटके कहा—उसे उसके गाँव पर भेज दिया गया है—कैसा है, नही कह सकते।

दोनो कमरे से बाहर निकले। उन्हे फिर से ऊपर जाना था। बेटा वहाँ इन्तजार ही कर रहा था। उसने इलाज का क्या किया, यह भी जानना था। बरामदे के छोर पर जाकर नरेन एक क्षण के लिए ठिठक पड़ा उसके बाद धीरे-धीरे रासबिहारी के पास आकर बोला—आप मेरी तरफ से विलास बाबू से एक बात कह देंगे। कहेंगे कि ज्यादा तेज बुखार होने पर आदमी का आवेग निहायत मामूली कारण से भी उबल सकता है। विजया के बारे मे डाक्टर की इस बात पर जिसमे वे अविश्वास न करें। और मुँह फेर कर वह तेजी से चला गया।

स्नान नही, भोजन नदारद, माथे के ऊपर कड़ी धूप और बैहार से नरेन दिघड़ा की ओर जा रहा था। लेकिन कुछ भी अच्छा नही लग रहा था उसे। इसीलिए चलते चलते अपने आप से ही वह पूछ रहा था, आखिर उसे क्या गज पड़ी है ? किस एक औरत ने अपनी श्रद्धा के पात्र को देखने का अनुरोध किया है, इसीलिए जिसे उसने कभी आँखो भी नही देखा, उसी को देखने के लिए इस तेज धूप में वह बैहार से चल पड़ा है ! यह गलत अनुरोध करने का उसे तिल भर भी हक न था, यह सोच उसका सर्वाङ्ग जल उठा और इस अनुरोध की रक्षा करने के लिए जाना भी अपने सम्मान के लिहाज से नुकसानदेह है,

यह वह अपने आपको समझने लगा—तो भी लौट न सका। पा पा करके दिघड़ा की ओर बढ चला और थोड़ी ही देर मे उस नितान्त दम्भी आग्रह के पालन के लिए अपने ही घर के द्वार पर जा पहुचा।

१७

कागज के एक टुकडे पर अपना नाम और अपनी विलायती डिग्री लिख कर नरेन ने अन्दर भेज दिया था। उसे पढकर दयाल बहुत सन्त्रस्त हो गए। एक इतना बडा डाक्टर पैदल चलकर उन्हे देखने आया है, यह मानो उन्हे अपनी ही एक अशोभन स्पर्द्धा और अपराध-सा लगा और उन्ही को वचित करके वे इस घर मे रह रहे हैं इस शर्म से कैसे वे मुँह दिखाएँ सोच नही सके जरा ही देर मे गोरा छरछरा सा एक युवक उनके कमरे मे दाखिल हुआ, तो वे अवाक् मुग्ध होकर देखते रह गए। उन्हे लगा, बीमारी उन्हे चाहे जितनी बडी हो और जो हो—अब की वे जी गए। वास्तव मे रोग मामूली है, फिक्र की कोई बात नही—यह भरोसा पाकर वे उठ बठे, यहाँ तक कि डाक्टर साहब को स्टेशन तक साथ जाकर छोड आना सम्भव है या नही, यह सोचने लगे। विजया खुद बीमार होते हुए भी उन्हे भूली नही है, उसी ने आग्रह करके उन्हे भेजा है, यह सुनकर कृतज्ञता और आनन्द से दयाल की आखें छलछला उठी। बात की बात म इस नए चिकित्सक और प्राचीन आचाय मे बात जम गई। नरेन के जी मे आज बडी ग्लानि जमा हुई थी, लेकिन इस बूढे के सन्तोष सहृदयता और हृदय की पवित्रता के सस्पश से उसका आधा घुल गया। बातो से उसने समझा, धम सम्बन्धी अध्ययन-मनन उसका यद्यपि मामूली है, तथापि वे धर्म को हृदय से प्यार करते हैं और इस अकृत्रिमता ने ही मानो धर्म के सत्य की आर उनकी दृष्टि को इतना स्वच्छ कर दिया है। किसी धम के खिलाफ उन्हे कोई शिकायत नहीं तथा मनुष्य अगर सच्चा हो तो हर धर्म उसे असली तत्व दे सकता है, यही उनका विश्वास है। दिलास-

बिहारी के कानों यह साम्प्रदायिक मतवाद पहुच जाने पर उनका आचाय पद कायम रह पाता या नही, स देह है, पर बूढ़े की शा त, मरल और विषयलेश हीन बात सुनकर नरेन मुग्ध हो गया। रासबिहारी और विलासबिहारी के भी उ होने बहुत गुण गाये। जिनकी भी चर्चा करते कहते कि उनके जैसा साधु पुरुष मैंने नही देखा। आदमी पहचानने की उनकी अनोखी क्षमता देख नरेन मन ही मन हसा। अन्त म विलास के प्रसग म अगले बैसाख महीने म विवाह का जिक्र करके बडी तृप्ति क साथ जताया कि उस समय आचाय पद मैं ही लू, यही विजया की अभिलाषा है और यह कहने स भी बाज न आए कि यही विवाह ब्राह्मसमाज का आदश होना चाहिए।

लेकिन वे अगर सौभाग्य और आन द का अधिकता से इतना विह्वल न हो गए होते, तो सहज ही देख पाते कि अ तम बात उनके श्रोता के चेहरे पर किस कदर स्याही पर स्याही पोत रही थी।

नहाने-खाने के लिए उ होने नरेन को लाख कहा पर उसे राजी न कर सके। कोई डेढ घ टे बाद नरेन जब सचमुच ही श्रद्धा से उ हे नमस्कार करके वहा से निकला ता उसे यह समझना बाकी नही रह गया कि उसे पीडा कहाँ है, क्यो सारी दुनियाँ उसे कडवी और स्वादहीन हो गई है। नदी पार करते ही बाएँ बडी दूर पर जमीदार महल का शिखर नजर आया और उसकी आखें फिर से जल उठी। उसने मु ह फेर लिया। बहार के रास्ते सीध स्टेशन की ओर तेजी से चलने लगा। आज अचानक इतनी बडी चोट न लगी होती, तो इतनी जल्दी वह अपने मन को नही पहचान पाता। अब तक उसे यही मालूम था कि जीवन म उसके हृदय ने सिफ विज्ञान को ही प्यार किया है। वहा और किसी चीज को कभी जगह मिल ही नही सकती, इस बात को इतना निस्सदेह विश्वास करता था, जभी ससार की ओर-और कामना की वस्तुए उसके लिए एक बारगी तुच्छ हो गई थी। लेकिन आज जब आघात से यह राज खुल गया कि उसके अनजानते हृदय न और एक चीज को वैसा ही प्यार किया है, तो दु ख और अचरज से चौंक ही नही उठा, आप अपने निकट ही बडा छोटा बन गया। आज अब किसी बात का मतलब समझने मे उसे अडचन नही पडी। विजया का सारा आचरण, सारी बातें ही उपहास है और इस पर

विलास के साथ जाने वह कितना हँसती रही होगी, इसकी कल्पना करके उसका सर्वांग लज्जा से बार-बार सिहर उठने लगा। अभी उस दिन उसका सर्वस्व लेकर उसे दर दर का भिखारी बनाने म भी जिसे तनिक झिझक न हुई, उसी के आगे अपना दुखडा रोकर अपना अंतिम सबल बेच जाने की कुमति उसमे किस महापाप से आई? अपने को हजारो धिक्कार देकर वह यही कहने लगा—मेरे साथ ठीक ही हुआ है। जो व्यक्ति उस निर्दयी औरत की एक मामूली बात पर अपना काम-काज छोडकर इतनी दूर दौड आ सकता है, यह सजा उसके लिए बजा ही है। अच्छा ही किया कि बेआबरू करके विलास ने उसे घर से निकाल दिया। स्टेशन पर पहुच कर देखा, जो माइक्रोस्कोप इतने दुखो की जड है, उसी को लेकर कालीपदो खडा है। पास आकर वह बोला—डाक्टर साहब, यह मा जी ने भेजा है।

नरेन ने रुखाई से कहा—क्यो?

क्यो, सो कालीपदो नही जानता था। लेकिन चीज डाक्टर साहब की है और इसी के लिए बहुत सारे अनर्थ हो चुके है, सामने या आडओट मे कालीपदो को कुछ जानना बाकी न था। अपनी अक्ल लडा कर हँसते हुए उसने कहा—आपने वापिस जो माँगा था!

मन ही मन बेहिसाब बिगड कर वह बोला—नही, नही माँगा था। कीमत के रुपये मेरे पास नही हैं।

कालीपदो ने सोचा यह रूठ कर कह रहे है। नौकर वह पुराना है, रुपये पैसे के बारे म विजया के मन के भाव और आचरण के बहुत उदाहरण वह आँखों देख चुका है। अपने उस ज्ञान को और भी जरा बढा-चढा कर जरा हँसते हुए, जरा लापरवाही के भाव से बोला—हुम, क्या तो कीमत! मा जी के लिए दो चार सौ रुपया भी रुपया है! आप ले जाइये। जब रुपये आपको हो जायें, भेज देंगे।

रुपये के बारे मे उसके प्रति विजया के ऐसे अयाचित विश्वास ने नरेन के क्रोध को कुछ नम तो कर दिया, लेकिन उसकी आवाज की कडवाहट को वह न मिटा सका। सौ दो सौ के बदले चार सौ देने की लाचारी बताते हुए जब उसने कहा, न-न, तू इसे वापस ले जा कालीपदो, मुझे जरूरत नही

इसकी। दो सौ की जगह चार सौ मैं न दे सकूंगा—तो कालीपदो बोला, नहीं नहीं डाक्टर साहब, आप इसे लेते जाइए। मैं गाडी पर रख कर जाऊंगा।

इसमे उसे थोडी-सी अपनी गज थी। विलास को वह फूटी आंखो नही देख सकता था, इसलिए उस पर आक्रोश के नाते नरेन के प्रति उसमे थोडी सी सहानुभूति पैदा हुई थी। इसीलिए विजया ने गरचे दरवान को ले आने का आदेश दिया था, तो भी खुद से चाह कर उस भारी चीज को कालीपदो खुद इतनी दूर ढोकर ले आया। नरेन आनाकानी कर रहा है, यह देख वह और पास जाकर धीमी आवाज करके बोला आप ले जाइए डाक्टर साहब। मां जी अच्छी हो जायें तो दाम आपको छोड भी दे सकती हैं।

इस इशारे से तो नरेन आग की तरह लहक उठा। अच्छा! उसने *बुलाया और फिर भी विलास ने उसका अपमान किया, यह बुद्धि उसी की* किंचित कृपा का पुरस्कार है।

लेकिन प्लेटफाम पर और और भी लोग थे, इसलिए कालीपदो के सिर से एक बला टल गई। नरेन ने किसी कदर अपने को जब्त किया और बाहर का रास्ता दिखाते हुए कहा—जाओ, मेरे सामने से चले जाओ। और मुंह फेरकर वह दूसरी ओर चला गया।

कालीपदो काठ का मारा सा खडा रह गया। आखिर हुआ क्या, उसकी खोपडी मे बात आई नही। पन्द्रह मिनट के बाद गाडी आई। नरेन गाड़ी पर सवार हो गया, तो कालीपदो धीरे धीरे फर्स्टक्लास की खिडकी के पास पहुचा। आवाज दी—डाक्टर बाबू! नरेन दूसरी ओर देख रहा था। मुंह घुमाते ही कालीपदो के सूखे से चेहरे पर नजर पडी। उससे ऐसा रूखा व्यवहार करके मन ही मन वह जरा दुखी हुआ था इसलिए जरा हंसकर सदय स्वर से बोला—अब क्या है कालीपदो?

उसने कागज का एक टुकडा और पेंसिल बढ़ाते हुए कहा—जी, आपका पता जरा

मेरा पता लेकर क्या करेगा तू?

मैं कुछ न करूंगा, मां जी ने मांगा है।

माजी के नाम से नरेन आपे मे न रहा। अचानक डपट कर बोल उठा—हट जा मेरे सामने से, बेहूदा, पाजी कहीं का।

चौंक कर कालीपदो दो कदम पीछे हट गया। इतने म सीटी देकर गाड़ी खुल गई।

कालीपदो लौट आया। ऊपर के कमरे मे पहुचा। विजया खाट के बाजू पर सिर टेक आँखें बन्द करके बैठी थी। आहट हुई कि उसने आँखें खोली। कालीपदो बोला—लौटा दिया माँ जी, नहीं लिया।

विजया की नजर मे वेदना या विस्मय, कुछ नहीं झलका। हाथ के कागज पेंसिल को टेबिल पर रखते हुए वह बोला—बाप रे, गजब का गुस्सा। पता जो पूछा तो जैसे मारने दौड़े! इस पर भी विजया ने कुछ न कहा।

रास्ते भर कालीपदो रिहर्सल-सा करता आया था कि मालकिन से जाकर वह क्या जवाब देगा उनके आग्रह का? लकिन आकर कोई उत्साह न देख उसने नजर उठा कर देखा—विजया की आँखें वैसे ही निर्विकार, वैसी ही सूनी पडी हैं। सहसा उसे लगा, जान सुनकर हो जैसे विजया ने उसे इस बेकार के काम मे भेजा था। वह ठगा-सा जरा देर चुप खड़ा रहा और अन्त म धीरे धीरे चला गया।

१८

पाँच ही छ दिन में विजया चगी तो हो गई, मगर सहत सुधारने मे देर होने लगी। विलास ने अच्छा डाक्टर दिखाने तथा पौस्टिक दवा और पथ्य के प्रबन्ध में कोर-कसर न की, लेकिन उसकी कमजोरी जैसे दिन-दिन बढ़ने ही लगी। इधर फागुन बीत चला, बीच मे बाकी सिर्फ चैत। वैसाख के पहले ही हफ्ते मे बेटे का ब्याह कर देंगे—रासबिहारी का यही सकल्प था। लेकिन दूल्हा दिन दिन जितना ही त दुरुस्त और कांतिमान होने लगा, कन्या उतनी ही दुबली और मलिन होने लगी—यह देख रासबिहारी रोज रोज आकर

उद्वेग प्रकाश करने लगे। कोशिश में कहीं से कोई कमी भी नहीं हो रही थी—फिर यह क्या! माइक्रोस्कोप वाली घटना जाने कैसे तो जरा बढ़ चढ़ कर बाप बेटे के कानों पहुंची थी। सुनकर छोटे बाबू जितनी ही उछल कूद करने लगे, बड़े बाबू उतना ही उन्हें शान्त करने लगे। अन्त में उन्होंने बेटे को चेता दिया कि इन छोटी-मोटी बातों के लिये उछलते फिरना न केवल फिजूल है, बल्कि ऐसी बीमार हालत में उस पर हँगामा करने से हित का विपरीत भी हो सकता है। विलास संसार में और जितने भी लोगों को चाहे तुच्छ और नाचीज सम मना हो, अपने पिता की पक्की बुद्धि को मन ही मन खातिर करता था, क्योंकि दुनियादारी में उस बुद्धि की कामयाबी की इतनी ज्यादा नजीरें थीं कि उस पर सन्देह की गुंजाइश ही न थी। इसीलिये जी में उसके जितना भी जहर चाहे जमा हो रहा हो, लेकिन खुलकर बगावत करने की उसे हिम्मत नहीं पड़ी। अब लेकिन न सह सका। उस दिन एक महज मामूली कारण से कालीपदो के पीछे हाथ धोकर पड़ गया। तब अब पीटा पीटा करते-करते आखिर गुमाश्ते को उसका हिसाब साफ कर देने को कहकर उसे डिसमिस कर दिया।

डाक्टर ने सुबह शाम विजया को थोड़ा थोड़ा टहलने को कहा था। उस रोज सुबह नदी किनारे से टहलकर विजया जैसे ही घर आई, कालीपदो ने रुआँसा-सा आकर कहा—माँ जी, छोटे बाबू ने मुझे जवाब दे दिया।

अचरज से विजया ने पूछा—क्यों?

कालीपदो रो पड़ा। बोला—मालिक सरग गए, उनसे मैंने कभी गाली नहीं सुनी, लेकिन, आज—और वह बार-बार अपनी आँखें पोंछने लगा। रुलाई रुकने पर उसने जो बताया, उसका सारांश यही कि गरचे उसने कोई कसूर नहीं किया फिर भी छोटे बाबू उसे फूटी आँखों नहीं देख सकते। डाक्टर साहब को मैं कबर देने गया था यह उन्होंने क्यों बताया, उन्हें मैं बुलाकर क्यों लाया—आदि-इत्यादि।

विजया चौकी पर बड़ी सख्त होकर बैठी रही। बड़ी देर तक कुछ भी न बोली। बाद में पूछा—वे हैं कहाँ?

कालीपदो बोला—कचहरी में कागज-पतर देख रहे हैं।

विजया देर तक आगा पीछा करके बोली—खैर, जाने दो। तुम काम

करो जाकर। कहकर वह खुद भी चली गई। घन्टे भर बाद उसने खिड़की में से देखा विलास कचहरी से निकला और घर चला गया। खोज खबर के लिए आज वह क्यो नही आया, वह समझ गई।

दयाल स्वस्थ होकर नियमित काम पर आने लगे थे। शाम की तरफ जब वह घर लौटने लगते विजया कभी-कभी उनके साथ हो जाती और बातें करते हुए कुछ दूर आगे तक उन्हें छोड आया करती।

दयाल का हृदय नरेन के प्रति आदर और कृतज्ञता से भरा हुआ था। बीमारी की बात आते ही वह इस नए डाक्टर की प्रशसा मे सहस्र-मुख हो उठते थे। विजया चुपचाप सुना करती, कोई आग्रह नही दिखाती, इसलिए दयाल खुल कर कह नहीं पाते थे कि उनकी बडी इच्छा है कि उन्ही को बुलवाकर तुम्हारी बीमारी के बारे मे पूछा जाय। भीतर का राज तो उन्हे मालूम नही था लिहाजा विजया की मौन उपेक्षा से उन्हें पीडा होती और हजार तरह के इशारे मे वे जताना चाहते कि 'वह नया' चाहे हो, पर जो नामी-गरामी डाक्टरो की जमात तुम्हारी झूठी चिकित्सा मे समय और पैसा बर्बाद करा रही है, वह उनसे कही काबिल है, यह मैं, शपथ लेकर कह सकता हू।

लेकिन इस छुपे हुए रहस्य का पता लगते उन्हे ज्यादा दिन न लगे। पाच-छे दिन के बाद ही एक रोज वे विजया के कमरे मे आकर बोले—कालीपदो को तो अब रखते नही बनता बिटिया।

विजया को यह आशका थी ही। फिर भी पूछा—क्यो?

दयाल बोले—तुम जिसे अपने यहा नही रख सकी, मैं उसे किस साहस पर रखूं?

विजया भीतर से नाराज होकर बोली—लेकिन वह भी तो मेरा ही घर है। दयाल लज्जित होकर बोले—बेशक। हम सभी तो तुम्हारे ही आश्रित हैं बिटिया। लेकिन

विजया ने पूछा—उन्होने क्या आपको मना किया है?

दयाल चुप रह गए। विजया समझ गई। बोली—तो उसे मेरे ही पास वापस भेज दीजिए। वह मेरे पिता का नौकर है, मैं उसे जवाब नही दे सकती।

दयाल कुछ क्षण चुप रहे। उसके बाद सकोच के साथ बोले—लेकिन

यह अच्छा न होगा बेटी। उनके खिलाफ करना तुम्हारे लिए उचित नही।

विजया सोचकर बोली—तो आप मुझे क्या करने को कहते है ?

दयाल बोले—तुम्हे कुछ भी न करना होगा। कालीपदो खुद ही घर जाना चाहता है। मेरी राय है, जब तक वह जाए।

विजया बड़ी देर तक मौन रही। एक उसांस लेकर बोली—तो वसा ही हो। लेकिन न जाने के पहले एक बार उसे मेरे पास भेज देंगे।

उसांस की आवाज से बूढ़े ने उधर ताका। विजया के मलिन मुखड़े पर गहरी घृणा की छाप देखकर वे काठ हो गए। उस दिन इस सम्बन्ध म कुछ छेड़ने का उन्हें साहस न हुआ।

इसके बाद चार-पाच दिन दयाल दिखाई ही न दिए। कचहरी म पुछ-वाया। पता चला, काम पर वह नही आ रहे हैं। उद्विग्न होकर सोचने लगी, किसी को भेजकर उनकी खोज ली जाय या नही फिर दरवाजे के बाहर उन्हीं के खांसने की आवाज हुई। विजया खुशी से उठ खड़ी हुई और आदर स उन्हें अन्दर लिवा आई।

दयाल की स्त्री चिररोगिनी है। अचानक उन्हीं की तबियत ज्यादा खराब हो गई, जिससे वह कई दिनो तक बाहर नही निकल पाए। फिर उनके चेहरे पर जो उद्वेगहीन भाव था, उससे विजया समझ गई कि डर की कोई बात नही। तो भी पूछा—अब वे कैसी हैं ?

दयाल बोले—आज वे अच्छी हैं। मैंने नरेन बाबू को लिखा था। कल तीसरे पहर आकर वे दवा द गए। गजब का इलाज। चौबीस ही घण्टे के अन्दर बीमारी बारह आने जाती रही ?

विजया होंठ दबाकर हँसती हुई बोली—क्यो न हो, आप लोगो का उन पर विश्वास कितना है ?

दयाल बोले—यह सही है। मगर विश्वास तो यो ही नही आता। हमने जांच कर देखा है न। लगता है घर मे कदम रखते ही मानो सब ठीक हो जायगा।

जरूर। कहकर विजया फिर जरा हँसी। अब की दयाल खुद भी जरा हँसे। बोले—फकत उन्ही का नहीं, और एक जने के लिए बता गए है। यह

कह-कर उ होंने टेबिल पर एक कागज का टुकडा रख दिया।

प्रेमस्निग्धदान था। ऊपर विजया का नाम लिखा था। लिखावट पर नजर पडते ही उसके हृदय मे वे कुछ हरूफ आन द के तीर से लगे। तुरन्त उसका चेहरा लाल हो उठा और उसी दम राख की तरह फीका पड गया।

बूढ़े अपने इस कृतित्व से ऐसे मग्न हो गए थे कि उधर उन्होंने ताका ही नहीं। बोले—मगर मैं टालने हर्गिज न दूंगा। इस दवा को आजमा कर देखना ही पडेगा।

विजया अपने को सम्हाल कर बोली—मगर यह तो अँधेरे मे ढेला फेंकना हुआ

गर्व से दमक कर दयाल बोले—इसे! ऐसा भला! यह क्या तुम्हारा कोई नेटिव डाक्टर है कि फीस दो और व्यवस्था लिखा लो? यह तो विलायत का पढा हुआ बहुत बडा डाक्टर है। अपनी आखो देखे बिना कुछ नही करने का। इनकी जिम्मेवारी कुछ ऐसी वैसी होती है?

सहज विस्मय से आखें फाडकर विजया ने कहा—अपनी आँखो देखकर कैसे? किसने कहा कि वे मुझे देख गए हैं? यह तो आपकी जबानी सुनकर उन्होने दवा लिख दी।

दयाल ने बारम्बार सिर हिलाकर कहा—हर्गिज नही। कल तुम जब बगीचे में रेलिंग पकड कर खडी थी। वे ठीक तुम्हारे ही सामने से गुजरे थे। तुम्हे भली-भांति देखा था उ होने। तुम अनमनी थी, शायद इसीलिए

हठात् चौंककर विजया बोली—वे क्या साहबी बाने मे थे? हैट था माथे पर? दयाल कौतुक से हँस पडे जोरों से। हँसते-हसते कहने लगे—भला कौन कह सकता है कि पक्का अँग्रेज नही? कौन कह सकता है कि वह हमारा स्वजाति बगाली है? खुद मे ही हैरान रह गया था।

वे सामने से गुजर गए, ठीक आँखो के सामने से उसे देखते हुए और उसने एक सरसरी निगाह डालने के सिवाय उसे देखा तक नही। पुलिस का कोई अँग्रेज कर्मचारी होगा बल्कि यह सोचकर उसने लापरवाही से नजर झुका ही ली थी। उसके हृदय मे क्या आधी बह गई, बूढ़े को खबर ही न हुई। वह अपनी ही धुन मे कहते गए—बस, चैत का महीना हो तो रहा।

वैसाख के पहले ही हफ्ते मे या बहुत हुआ तो दूसरे हफ्ते मे शादी । मैंने कहा, बिटिया तो चङ्गी ही नही हो रही है डाक्टर साहब, कोई दवा दीजिए कि— उनके मुँह की बात वही तक रह गई ।

यो अचानक उन्हे चुप हो जाते देख विजया ने आँख उठाकर उनकी नजर का अनुसरण किया । देखा विलास आ रहा है । कोई बात चल रही थी और उसके आते ही वह बन्द हो गई—आते ही यह अनुभव करके क्रोध से विलास का आँख मुँह काला पड गया । लेकिन अपने को भरसक सम्हाल कर वह एक कुर्सी खींचकर बैठ गया । सामने ही वह नुस्खा पडा था । नजर पडते ही उठाकर उसे ऊपर से नीचे तक तीन चार बार देखा । टेबिल पर उसे रख कर बोला—नरेन डाक्टर का नुस्खा देख रहा हूँ । आया कैसे—डाक से ?

किसी ने कोई जवाब नही दिया । विजया जरा मुँह घुमा कर खिडकी से बाहर देखने लगी ।

हिंसा से जली हुई हँसी हँसकर विलास बोला—डाक्टर तो बस नरेन डाक्टर । जभी शायद औरो की दवा खाई नहीं जाती, शीशियों मे ही सडती रहती है और बाद मे फेंक दी जाती है । खैर, मगर कलयुग के इस धन्वन्तरी ने यह नुस्खा भेजा कैसे जरा सुनूँ ? डाक से ?

इसका भी किसी ने जवाब नही दिया ।

इस पर विलास ने दयाल से कहा—अब तक तो आप भाषण दे रहे थे । सीढी पर से ही सुनाई पड रहा था—आपको कुछ पता है ?

जब से दयाल ने विलास के मातहत यहा नौकरी ली, वह मन ही मन उससे बाघ जैसा डरते थे । कालीपदो से भी बहुत कुछ सुन रक्खा था । सो विलास के नुस्खा उठाते समय से उनका कलेजा बाँस के पत्ते सा काप रहा था । यह प्रश्न सुनते ही उनकी जीभ मुँह मे जड-सी हो गई बात न फूटी ।

विलास ने थोडा रुक कर कहा—एक बारगी भीगी बिल्ली बन गए ? मैं पूछता हूँ जानते हो कुछ ?

नौकरी का डर बोझ से लदे गरीब को कैसा हीन बना देता है, यह देखकर कष्ट होता है । दयाल चौंक कर अस्फुट स्वर मे बोले— जी हाँ, मैं ही ले आया हूँ ।

अच्छा, यह बात है ! कहाँ मिला वह ?

दयाल ने डरते डरते किसी कदर बात बता दी।

विलास कुछ देर स्तब्ध रहा। उसके बाद बोला—मैंने आपको पिछले साल हिसाब सुधारने को कहा था, हो गया ?

दयाल उडे हुए चेहरे से बोले—जी, दो दिन म कर लूँगा।

अब तक क्यो नही हुआ ?

घर में बीमारी के चलते परेशानी थी। खुद पकाना पडता था—आ ही न सका।

जवाब मे विलास भोंडी आवाज मे दयाल की नकल बनाते हुए हाथ हिलाकर बोला—आ ही न सका ! फिर क्या है मुझे राजा बना दिया ! फिर तीखा होकर बोला—मैंने अभी पिता जी से कह दिया था कि ऐसे बुड्ढे-टेढ़े से काम नही चलने का।

अब, इतनी देर के बाद, विजया ने गर्दन घुमाई। शान्त गम्भीर भाव, लेकिन आँखो से चिनगारियाँ फूट रही थी। धीमे लेकिन सख्त स्वर म बोली—पता है आपको, दयाल बाबू को यहा कौन लाया है ? आपके पिता जी नहीं—मैं।

विलास धमक गया। उसकी ऐसी आवाज उसने कभी नहीं सुनी, ऐसी नजर भी कभी नही देखी। मगर वह झुकने वाला न था। सो एक पल चुप रहकर बोला—जो भी लाए, मुझे जानने की जरूरत नही। मैं काम चाहता हूँ—मेरा नाता काम से है।

विजया बोली—जिनके घर मुसीबत हो वे काम करने कैसे आएँ ?

विलास उद्धत की नाई बोला—मुसीबत की दुहाई सभी दिया करते हैं। लेकिन वही सुनता रहूं तो मेरा काम नही चल सकता। मैंने जरूरी काम का हुक्म दिया था, क्यो नही हुआ इसी की कैफियत माँगता हू मुसीबत को नही सुनना चाहता।

विजया के होठ काँपने लगे। बोली—सभी झूठे नही होते—सभी झूठमूठ मुसीबत की दुहाई नही दिया करते—कम से कम मन्दिर के आचार्य नहीं देते ! खैर, मैं आपसे पूछना चाहती हू, आपको जब मालूम है कि काम

जरूरी है, होना ही चाहिये, तो खुद क्यो नही किया ? आपने क्यो चार दिन का नागा किया। आप पर क्या मुसीबत आई थी, सुनू ?

विलास अचरज से हक्का-बक्का हो गया। बोला—मैं खुद वही लिखू ! मैंने नागा क्यो किया।

विजया बोली—जरूर। हर माह आप दो सौ रुपये लिया करते हैं। वह रुपये मैं आपको यो ही तो नही देती काम के लिए देती हूँ।

कल के पुतले-सा विलास बोल गया—मैं तुम्हारा नौकर हू, मुलाजिम हूँ मैं ?

असह्य क्रोध से विजया को हिताहित का ज्ञान नही रह गया था, वह तीखे स्वर मे बोली—काम करने के लिए जिसे तनखा देनी पड़ती है, उसे उसके सिवाय और क्या कहा जाता है ? आपके अनगिनती अत्याचार मैं जबान ब द किए सहती रही हू, लेकिन जितना ही सहती रही हूँ, उत्पात बढ़ता ही गया है। जाइए, नीचे जाइए। मालिक नौकर के सिवाय आज से आपके साथ मेरा कोई नाता नही रहेगा। जिस तरीके से मेरे दूसरे कर्मचारी काम करते हैं, वैसा करते बने तो करें, नही तो मेरी कचहरी मे दाखिल होने की कोशिश न करें।

विलास उछल पडा। दाएँ हाथ की तर्जनी हिलाते हुए बोला—यह हिम्मत तुम्हारी !

विजया ने कहा, मेरी नही, आपकी। मेरे ही स्टेट मे नौकरी करेंगे और मुझी पर अत्याचार ! मुझे 'तुम' कहने का अधिकार आपको किसने दिया ? मेरे नौकर को मेरे ही घर मे जवाब देना मेरे अतिथि की मेरी ही आँखो के सामने तौहीन करना—यह सब हिमाकत कहाँ से आई आपको ?

विलास क्रोध से पागल हो गया। चीखकर घर को गु जाते हुए बोला—अतिथि के बाप का पुण्य बल था कि उस दिन उसकी मरम्मत नही की—उसका एक हाथ नही तोड दिया। कमीना बदमाश, धोखेबाज, लोफर कही का ! फिर जो कभी उसे देखा

चीख से डरकर गोपाल कन्हैयासिह को बुला लाया था, दरवाजे पर उसकी सूरत जो दिखाई दी, सो शर्मिन्दा हो विजया ने अपनी आवाज को संयत

और स्वाभाविक करके कहा—आपको पता नहीं है, मगर मैं जानती हूँ कि आपकी यह कितनी बडी खुश किस्मती थी कि हाथ उठाने का आपको साहस नहीं हुआ। वे एक उच्चशिक्षित बडे डाक्टर है। उस दिन आपने हाथ उठाया भी होता, तो एक बीमार औरत के कमरे म हगामा न करके वे उसे बर्दाश्त करके चले जाते। मगर मेरा यह कहा हर्गिज न भूलें कि आइन्दे कभी उनके बदन पर हाथ लगाने का आपको शौक हो आए, तो पीछे से लगायेंगे, या अपने जैसे और पाँच सात जने को साथ लेकर तब सामने से लगायेंगे। खैर, शोर गुल बहुत हो चुका, रहने दीजिए। नीचे से डरकर नौकर चाकर, दरवान तक दौड कर आ पहुचे हैं। जाइए, नीचे जाइए।—और प्रत्युत्तर का इतजार बिना किये ही बगल के दरवाजे से वह उस कमरे मे चली गई।

१९

बेटे की जबानी यह घटना सुनकर गुस्सा, क्षोभ और उम्मीद टूट जाने की निराशा से रासविहारी के ब्रह्म ज्ञान तथा आनुषगिक आदि का नकाब एक पल मे खिसक पडा। वे तीखे-कडवे शब्दो मे बोले—अरे बाबा हिन्दू लोग जो हमें नीच कहते है वह झूठ थोडे ही है। ब्राह्म ही हुए या जो हुए, है तो आखिर कैवत ही? ब्राह्मण कायस्थ का लडका होता तो भलमनसाहत भी सीखता, किस बात से अपना भला बुरा होता—नहीं होता है, यह अक्ल भी आती। जाओ, अब हल बैल लेकर खेतो म अपन कुल धम को करत फिरो। उठते-बैठते तुझे मैं तोते की तरह रटाता रहा कि भले भले यह काम हो जाने दो, फिर जो जी मे आये,करना। सो नहीं, सब्र नही—चला उसको उभाडने। वह ठहरी राय परिवार की लडकी। खूँखार हरि राय की पोती, जिसके डर स बाघ-बैल एक घाट में पानी पिया करते थे। तू जबर्दस्ती उसकी नाक में रस्सी पिन्हाने गया—बेवकूफ कहीं का इज्जत-आबरू गया, इतनी बडी जमींदारी की उम्मीद निकल गई, महीने महीने तनखा के नाम पर दो सौ

रुपये आते थे, वह गए—जा, खेतिहर का लडका अब जोत-कोड कर पेट चला । और अब मेरे पास नालिश करने पहुचे हैं । जा, मेरी नजर के सामने से हट जा, अभागा, शैतान ।

विलास खुद भी समझ रहा था कि यह न हुआ होता तो अच्छा था । तिस पर पिता की यह भीषण मूर्ति का देखकर उसकी तेज हुंकार ठण्डी पड गई । फिर भी वह कोई कैफियत देने जा रहा था कि पिता नाराज होकर कमरे मे चल गये । लेकिन गुस्से मे बेटे को जो भी चाहे कह काम म कभी उत्तेजनावश जल्दीबाजी मे उसे उन्होने बिगाडा नहीं, आलस से भी चौपट होने की नौवत नही आने दी । इसलिए उस रोज तो उन्होने विजया को शान्त होने का मौका दिया और दूसरे दिन अपनी वही शान्ति और गम्भीरता लिए विजया के बैठके मे प्रकट हुए और एक कुर्सी लेकर बैठ गये ।

विजया के क्रोध का पागलपन उतर गया वह अपनी उस असयत रुढता और बेहया बकवास को याद कर लाज से गडी जा रही थी । घर के नौकर-चाकर और कमचारियो के सामने वह ऐसा जो एक नाटक खेल गई, इसी बीच वह शायद बढ चढ कर गाँव मे घर घर चर्चा का विषय बन बैठा हो, तालाव और नदी के घाट पर औरतो के हँसी मजाक की खुराक बन गया हो शायद । इसके भोंडेपन की कल्पना से तब से वह कमरे से बाहर तक न निकली । उसकी शर्मिन्दगी सौगुनी ज्यादा, यह सोच कर बढ गई कि आज जिसे खुलेआम नौकर कहने मे उसे जरा भी हिचक न हुई, दो दिन बाद उसी को पति कहकर बरमाला गले डालने की बात भी कहीं फलने से बाकी नही है ।

सो, जब रासबिहारी धीरे धीरे कमरे मे आए और प्रसन्न मन से आसन ग्रहण किया विजया सिर उठा कर उनकी ओर ताक भी न सकी । लेकिन इसी की वह हर पल प्रतीक्षा करती रही थी और जो-जो दलीलें और कटु आलोचनाएँ उठने वाली थी, मोटी-मोटी उसका लेखा उसन कल से ही लगा लिया था । इसीलिए एक प्रकार से वह स्थिर ही बैठी रही । लेकिन बूढ़े ने बिल्कुल उलटा राग अलाप कर विजया को दंग कर दिया । निश्वास छोड कर बोले—बेटी विजया, यह सुनते ही मुझे जो खुशी हुई है कि मैं कल

ही दौड़ा आता यहाँ, अगर इस पेट की बीमारी ने मुझे बिस्तर पर पड़े रहने को मजबूर न किया होता। युग-युग जियो बेटी। तुमसे यही तो उम्मीद करता हूँ—यही मैं चाहता हूं।—कह कर फिर एक उच्चकोटि का दीर्घनिश्वास छोड़ कर बोले—उस सर्वशक्तिमान से यही प्रार्थना करता हूं कि सुख, दुःख भले बुरे में वे मुझे जो धर्म है, जो न्याय है, उस पर अटूट श्रद्धा रखने की शक्ति दें। इसके बाद हाथ जोड़ कर माथे से लगाते हुए उन्होंने शायद उसी सर्वशक्तिमान को प्रणाम किया।

उसके बाद तुरंत आँखें खोलकर आवेश में कहने लगे, मगर मैं किसी भी तरह यह नहीं समझ पाता कि मेरे जैसे भोले भाले विरक्त आदमी का बेटा होते हुए भी विलास ऐसा पक्का दुनियादार कैसे बन बैठा? जिसके बाप को आज तक भी दुनियादारी नहीं आई, हानि-लाभ की धारणा न हो सकी, वह इसी उम्र में ऐसा पक्का कर्मठ कैसे हो गया? उनकी क्या लीला है, क्या संसार का रहस्य है, समझने का उपाय नहीं—। और फिर आँखें बन्द करके उन्होंने सिर झुका लिया।

विजया चुप बैठी रही। रासबिहारी थोड़ा चुप रह कर फिर कहने लगे, मगर अति किसी बात की अच्छी नहीं। मैं जानता हूं, काम ही विलास का जान है। काम के लिए वह अन्धा है। कर्त्तव्य की उपेक्षा उसे शूल सी दुःख देती है, लेकिन तो क्या मानो की मर्यादा नहीं रखनी होगी? दयाल जैसे आदमी की गलती भी क्या क्षमा नहीं की जायगी? मानता हूं अपराध छोटे-बड़े और धनी निर्धन का विचार नहीं करता। तो क्या अक्षर-अक्षर उसका पालन करना होगा? मैं सब समझता हूं, काम न करना भी गुनाह है, खबर दिए बिना नागा करना भी गुनाह है—दफ्तर का अनुशासन तोड़ना आफिस मास्टर के लिए बहुत बड़ा अपराध है, तो क्या दयाल को भी—नहीं नहीं बिटिया, हम बूढ़े आदमी हैं अपने मन न तो वह तेज है, न वह बल ही—विलास की कर्त्तव्यनिष्ठा की साहब लोग लाख तारीफ करें, उसे जितना बड़ा चाहे समझें, हम लेकिन हर्गिज अच्छा नहीं कह सकते। हुआ चाहे अपना लड़का, इस मुँह से झूठ तो लेकिन नहीं निकल सकता। मैं कहता हूं, काम न हो दो दिन बाद ही होती, दस रुपये का नुकसान ही न होता, लेकिन क्या किसी को

भूल भ्रांति, दुर्बलता के लिए माफी नही दी जा सकती ? तुम्हारा जायदाद की चिन्ता में ही विलास का मन डूबा रहता है, यह मैं उसकी हर बात से समझता हू। किन्तु मुझे भूल मत समझना बेटी, खुद ससार विरागी होते हुए भी मैं जगह जायदाद को बचाना गृहस्थ का परम धम मानता हू। उसकी तरक्की करना और भी बडा धम है, क्योंकि उसके बिना ससार का कल्याण नही किया जा सकता। विलास के हाथो अगर तुम्हारी जमीदारी दुगनी, चौगुनी यहाँ तक कि दस गुनी हुई—यह सुना तो मुझे जरा भी अचरज न होगा—और हो भी रही है, मैं देख रहा हू। सब ठीक है, सब सच है—परन्तु इस तरक्की म कही जरा अडचन आ पडे तो धीरज छोड दें, यह भी बुरा है। मैं इसीलिए उस अद्वितीय निराकार के पाद पद्मों म बार-बार यही याचना करता हू कि उसकी ढिठाई के लिए तुमने उसे जो सजा दी है, उसी से वह जिसम भविष्य के लिए चेते। काम और काम। ससार मे केवल क्या काम के लिए ही आना हुआ है। काज के पैरो पर दया माया की भी बलि-चढानी होगी ? ठीक ही हुआ तुम्हारे ही हाथो उसे सबसे अच्छा सबक पाने का सुअवसर मिला।

विजया कुछ भी न बोली। रासबिहारी कुछ देर तक गोया अपने मन मे ही मग्न रहे। उसके बाद सिर उठाया। जरा हँसे और कोमल कण्ठ से कहने लगे, मेरी दो सतानो मे से एक काम-पागल और दूसरी दया-माया म उन्मादिनी। एक कठोर कमठ, दूसरी स्नेहममता की निर्झरिणी। मैं कल से यही सोच रहा हू, भगवान इन दोनो की जोडी से जब रथ चलाएँगे तो न जाने कौन सा स्वग उतर आयगा। मेरी एक और विनती है बिटिया यह अलौकिक वस्तु देख जाने को जिस मे वे मुझे एक दिन के लिए भी जीवित रक्खें। यह कह कर इस बार उन्होने सेज पर माथा रख कर प्रमाण किया। सिर पर उठा कर बोले—गजब है, धम पर भी तो उसे ऐसा वैसा अनुराग नही। मन्दिर प्रतिष्ठा के लिए क्या मैंने लोड कोशिश की, की उसने ? जो उसे जानता नही, वह यही सोचेगा कि विलास का ब्राह्मधम के सिवा ससार म और कोई उद्देश्य ही नही। वह सिफ इसी के लिए जी रहा है—और शायद कुछ नही जानता। मगर मेरी भी भूल देखो। बेटे की चर्चा मे इस कदर भूल बैठा हूँ कि तुम्ही को समझा रहा हूँ—मानो मुझसे तुमने उसको कम समझा है। मानो मुझसे तुम

उसका कम भला चाहने वाली हो!—वे हलका-हलका हँसे—मुझे जो इतनी खुशी है, वह इसीलिए तो। तुम्हारे दिल को मैं आईने की तरह साफ देख पाता हू। तुम्हारे कल्याण का हाथ तो बडा साफ दीख रहा है। और यह भी कहूँ, तुम्हारे सिवा यह काम कर ही कौन सकता है, करेगा ही कौन ? उसके धर्म अथ काम, मोक्ष, सबकी सगिनी तो तुम्ही हो। उसकी क्षमता तुम्हारी बुद्धि वह भार ढोएगा, तुम राह दिखाओगी। तुम्हारा सम्मिलित जीवन जभी तो साथक होगा! इसी से आज मैं फूला नही समाता। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि विलास को अब कोई भय नही, उसके भविष्य पर मुझे जरा भी आशकित नही होना है लेकिन पूछता हू मैं, इतनी सूझ-बूझ, इतना ज्ञान, भावी जीवन को सफल बनाने की ऐसी अक्ल इस नन्हे से सर म अब तक कहाँ छिपाए थीं बिटिया ? मैं तो हैरान रह गया आज।

विजया का सर्वा ग चचल हो उठा, लेकिन वह चुप ही बठी रही। रासबिहारी ने घडी देखी और चौंक से पडे-अरे! दस बजने लगे। एक बार दयाल की स्त्री को जो देखने जाना है।

ठीक ही है।—रासबिहारी दरवाजे की ओर दो कदम बढ़े फिर थम गए। बाले—लेकिन असली बात तो कहने से रह ही गई।—वे लौट आए और जहाँ बठे थे, वहीं बैठ कर बोले—अपन इस बूढे चाचा का एक अनुरोध तुम्हें रखना है विजया! कहो, रक्खोगी ?

विजया मन ही मन डर गई। उसके चेहरे के भाव को कनखियो से ताक कर रासबिहारी ने कहा—वह नही होने का। चचा का यह हठ रखना ही होगा। कहो, रक्खोगी।

विजया ने अस्फुट स्वर मे कहा—कहिये।

रासबिहारी बोले—उसने न केवल सोना-खाना छोड दिया है, बल्कि अफसोस के मारे भी जल रहा है, मैं जानता हू। लेकिन ऐसे मे तुम्हें जरा सख्त होना है बिटिया। कल वह अभिमान से नही आया, लेकिन आज नही रह सकेगा, आ ही पहुचेगा। लेकिन माँफी माँगते ही तुम माफ कर दो, ऐसा मत करना। यही मेरा अनुरोध है। जिस बात के लिए सजा दी है, वह सजा कम से कम और एक दिन वह भोगे।

विजया के चेहरे पर आश्चर्य की झलक देखकर वे जरा हँसे। स्नेह-भीगे स्वर मे बोले—तुम्हे खुद कितनी तकलीफ हो रही है, यह क्या मुझसे छिपी है बिटिया ? मैं क्या तुम्हे पहचानता नही ? आखिर मेरी तो बिटिया हो। तुम बल्कि उससे भी ज्यादा कष्ट पा रही हो—मैं यह भी जानता हू। लेकिन गुनाह की सजा पूरी हुए बिना प्रायश्चित तो होता नही। कम से कम यह गहरा दुख और एक दिन भोगे बिना वह मुक्त नही होगा। इतना कठोर न होते बने, तो आज उससे भेंट ही न करो, वह निराश लौट जाय। यह पीडा उसे कुछ और पा लेने दो—यही मेरा एकान्त अनुरोध है।

रासबिहारी के चले जाने के बाद विजया अकृत्रिम विस्मय से अभिभूत-सी बैठी रह गई। उनसे ऐसी बातो, ऐसे व्यवहार की तो उसने आशा ही नही की थी। वरन् इसका ठीक उलटा होगा, इस आशका से उनके आते ही वह अपने को सख्त कर लेने की सोचे बैठी थी। विलास अकेला चोट खाकर लौट गया है, लेकिन जवाबी चोट के लिए अकेला नही आयेगा और वसे मैं रास बिहारी से सख्ती से निबटारे की नौबत आएगी—उस बीभत्सता की नगी तस्वीर अपने मन मे आंक कर तब से उसे जरा चैन न थी।

अब जब रासबिहारी धीरे धीरे चल गए तो उसके दिल पर से एक भारी पत्थर ही सिर्फ उतर न गया बल्कि यह भी याद आया कि कभी इस आदमी को वह हृदय से श्रद्धा करती थी, और, वह उतनी बडी श्रद्धा धीरे धीरे कैसे हट गई, उसका भी धुंधला सा आभास याद आकर उसे दुखाने लगा। ऐसा भी एक स देह उसके मन मे झाकने लगा कि शायद हो कि बूढे के वास्तविक इरादे को न समझ पाकर ही उसके प्रति अन्याय किया है और उसके परलोकवासी पिता अपने बाल्यबधु के प्रति इस अन्याय से क्षुब्ध हो रहे है। वह आप ही आपको बार बार कहने लगी, कहा अपराध के लिए तो वे अपने बेटे को भी माफ नही करते, बल्कि वे तो बार बार यही आग्रह कर गए कि मैं सहज ही उसे क्षमा करके उसकी सजा को कम न कर दूँ।

और एक बात। बूढे के सभी अनुरोध, उपरोक्त आन्दोलन आलोचना मे गोपन होते हुए भी, जो इशारा सबसे ज्यादा कूद उठा था, वह था विलास का अपार प्यार और उसी का अवश्यभावी फल है—घोर ईर्ष्या।

यह बात विजया की अजानी थी, सो नही, लेकिन बाहर के आलोडन से मानो वह नई लहरो मे तरागत होकर उसके हृदय मे लगी। अब तक जो उसके हृदय की मतह मे छनकर जमा था, वही बाहर के आघात से फूल कर हृदय के बाहर बिखरने लगा। इसीलिए रासविहारी के गए देर हो गई, तो भी उसकी बातें उसके कानो म गूँज रही थी और वह चुपचाप खिडकी से बाहर देखती हुई खोई सी बैठी थी। ईर्ष्या दुनियाँ म सदा का एक निंदित सत्य है, मगर उसी निंदित चीज ने विजया की नजरो मे विलास की बहुत-सी निंदाओ को फीका कर दिया। और, जिसे विपक्षा समझकर इन दोनो बाप बेटा को हजारो प्रकार की प्रतिहिंसा का विभीषका कल से उसके एक-एक पल को अवश और निर्जीव किए दे रहे थी, आज फिर उन्ही को अपना समझने का मौका पाकर उसने म तोष की साम ली।

कालीपदो ने आकर पूछा—मा जी तो मैं फिर अपने घर एक चिट्ठी लिख भेजूँ कि मैं नही जा सकूँगा?

विजया आगा पीछा करके बोली—अच्छा।

कालीपदो चला जा रहा था। विजया ने पुकार कर लज्जा-दुविधा जडे स्वर मे कहा—मैं क्या कहती हू कालीपदो, चिट्ठा जब तुम लिख ही चुके हो, तो महीने भर के लिए घर से घूम ही आओ। उनकी भी बात रह और तुम्हारा भी घर जाना—काफी दिन से गए भी तो नही हो, क्या ख्याल है?

कालीपदा मन ही मन हैरान हुआ मगर राजी होकर बोला—अच्छा तो मैं महीने भर के लिए घर स हो ही आता हू माँ जी। यह कहकर जब कालीपदो चला गया, तो अपनी कमजोरी पर विजया को हँसी तो लज्जा हो आई, लेकिन इस पर भी फिर उसे बुलाकर मना करते भी न बना। उसमे भी लाज लगने लगी।

२०

चहारदिवारी के किनारे जिन कुछ कमरो मे विजया की जमीदारी का

काम काज होता था, उनके सामने ही लीचो के कुछ घने पेड़ थे, इससे इस घर के बरामदे से उन कमरो का लगभग कुछ भी नही दिखाई पडता। इसके सिवाय, पूरब वाली दीवार मे जो छोटा सा दरवाजा था, उससे कब कौन कमचारी आता है, कब जाता है, यह जानने का कोई उपाय न था।

उसी दिन से दयाल फिर विजया के यहाँ नही आए। काम करने के लिए कचहरी भी आते है या नही, यह पूछताछ करने मे भी उसे हिचक हुई, और विलास बिहारी अब इधर नहीं फटकते, यह बात बिना किसी से पूछे ही उसने स्वत सिद्ध मान ली थी। बीच म एक दिन दसेक मिनट के लिए रास-बिहारी भेंट करने आये थे, पर मामूली तौर पर तबीयत के हाल-चाल के सिवाय कोई बात न हुई।

मनुष्य के अन्तर की बात अन्तर्यामी ही जाने, लेकिन जिस प्रसन्नता और सौजन्य के साथ उस दिन उन्होने बेटे के खिलाफ वकालत की थी किसी अजाने कारण से उनका वह भाव बदल गया था, निश्चित रूप से यह जानकर विजया ने उद्वेग का अनुभव किया। कुल मिलाकर एक असन्तोष और अस्थिरता म ही उनके दिन बीत रहे थे। ऐसे ही कई दिन और कट गए।

तीसरे पहर जरा टहल आने के ख्याल से विजया नदी की ओर अकेली ही चलने को थी, बूढ़ा नायब बहुत से कागज-पत्तर लेकर आ सामने खडा हुआ। भक्तिपूर्वक नमस्ते करके पूछा—आप कही बाहर जा रही हैं मा जी? कन्हैयासिह कहा है?

विजया मुस्करा कर बोली—पास ही नदी के किनारे स हो आती हूँ जरा। दरबान की जरूरत नहीं। मुझ से कोई काम है?

नायब बोला—जी, था थोडा सा। खैर, कल ही होगा।—कह कर वह लौटने लगा। विजया ने फिर से मुस्करा कर पूछा—थोडा ही सा काम है, तो आज ही कहिये न? यह इतना कागज पत्तर?

वही सब दिखाकर नायब ने कहा—आप ही के पास आया हू। पिछले साल का हिसाब ठीक हो गया है, सही बनानी होगी। और, छोटे बाबू का हुक्म है, चालू साल के हिसाब मे रोज रोज आपका दस्तखत जरूरी है।

विजया बहुत हैरान हुई। वह लौटकर बैठके मे बैठ गई। पीछे पीछे

नायब आया। बहियाँ मेज पर रक्खी और उसमे से एक को खोलने लगा कि विजया ने टोक कर पूछा—यह हुक्म छोटे बाबू ने कब दिया है ?

आज ही सवेरे।

आज सबेरे वे आए थे ?

वे तो रोज ही आ रहे है ?

अभी वे कचहरी मे है ?

नायब ने गर्दन हिलाकर कहा—जी, मुझे कागज-पत्तर सम्हाल कर अभी अभी चले गए।

उस दिन का हगामा किसी अमले से छिपा न था। विजया के सवाल का मतलब समझकर नायब ने धीरे-धीरे बहुत कुछ बताया। विलास बाबू रोज ठीक ग्यारह बजे जाते हैं, किसी से विशेष बोलते नही, काम करके पाँच बजे चले जाते है। दयाल बाबू की स्त्री बीमार है, जब तक वे अच्छी नही हो जाती—तब तक के लिए उन्हे छुट्टी दे दी है—आदि आदि बहुत-सी जानकारी उसने मालकिन को कराई।

शर्माई-सी सब सुन कर विजया ने समझा, विलास ने ये सारे नए कायदे-कानून रूठ कर ही शुरू किए है। फिर भी उसने यह नही कहा कि मेरी सही की जरूरत नही—अब तक जिनकी सही पर सब चलता रहा है, उन्ही की सही से चलेगा। बल्कि यह कहा, आज रहने दीजिये। कल सबेरे आकर मुझ से सही करा लीजिएगा। नायब को उसने रुखसत किया और वहीं स्तब्ध हो बैठी रही। बाहर दिन का प्रकाश धीरे-धीरे बुझ गया, पडोसियों के घर घर की शखध्वनि से साँझ का आसमान गूँज उठा, फिर भी उसके उठने के आसार नही दिखाई दिए। पता नही, वह कब तक और इसी तरह बैठी रहती, लेकिन रोशनी लेकर बैरा कमरे मे ज्यो ही घुसा कि अँधेरे मे अकेली मालकिन को देख वह चौंक उठा—खुद विजया भी लजाकर खडी हो गई और बाहर निकलते ही हैरान रह गई।

जो नजर आया, वह उसकी कल्पना के भी परे था। भला वह किसी भी कारण से, किसी भी बहाने फिर इस घर मे कदम रख सकता है ? लेकिन उस धुँधलके मे भी साफ नजर आया कि उस दिन का वही साहब हैट समेत

लगभग साढ़े छ फुट लबा शरीर लिए गेट के अन्दर दाखिल हुआ और आम बगालियो से कम से कम ढाई गुना लम्बा डग भरता हुआ इधर आ रहा है।

आज उसे पुलिस कर्मचारी समझने की गलती न हुई। लेकिन आनन्द की उस अपरिमित दमकती रेखा को उसकी आकाश पाताल व्यापी निराशा जो निगल गई! पेड पौधो से घिरी आडी टेढी राह पर कभी कभी उसकी देह छिप जरूर जा लगी, लेकिन ककरीली राह पर उसके जूते की आवाज क्रमश निकटतर होती गई। विजया ने मन म सोचा, इ ह सादर बुलाकर बिठाना अन्याय है, लेकिन दरवाजे क बाहर से लौटा देना तो असाध्य ही है।

इस सकट से बचने की कोई तरकीब नही सूझी, सो जैसे ही राह के मोड पर कामिनी क पेड के पास उसकी ऋजु देह सामने आई कि वह मुड कर झट अपने कमरे म चली गई। बूढ़े नायब को कुछ पता न था, वह मजे म चला जा रहा था, अचानक साहब को देखकर वह डर गया। साहब ने उससे पूछा तो उसकी आवाज स पहचान उसकी जान मे जान आई। बोला—जी हा, बटके मे ही ह। कहकर नायब चला गया। सवाल और जवाब दोनो ही विजया के कानों पहुचा। जरा ही देर मे अ दर जाकर नरेन ने नमस्कार किया। लाठी और टोपी मेज पर रखकर हँसते हँसते कहा—'अच्छा, देखता हू, मेरी दवा स गजब का लाभ हुआ ह। वाह!

थोडी ही देर पहले विजया ने सोचा था, आज शायद उससे आखें उठाकर ताकते भी न बनेगा—किसी बात का जवाब तक न निकल सकेगा मुँह से। मगर गजब, उसकी आवाज का सुनना था कि केवल उसकी दुविधा और सकोच ही छूम तर हो गया, बल्कि उसके हृदय के अधेरे कोन म पडी सुर मे बँधी हुई वीणा के तार पर माना अनजानते किसी न उँगली फेर दी और लहमे म अपना सारा विषाद भुला कर विजया बोल उठी—कैसे जाना? मुझे देखकर या किसी से सुनकर?

नरेन न कहा—सुनकर। क्यो अपने दयाल बाबू से सुना नहीं क्या कि मेरी दवा खाने की भी जरूरत नहीं पडती नुस्खे पर महज जरा नजर डाल कर फाड फेंकने से भी आधा लाभ होता है? और अपनी रसिकता पर खिलकर ठहाके की हँसी से उसने कमरे को कपा दिया।

विजया समझ गई, हो न हो, दयाल से सारी बातें सुनकर ही आज व्यंग करने आया है। इस अस्वाभाविक ठहाके से मन ही मन नाराज होकर ठोकर लगाती हुई बोली—ओ शायद इसीलिए बाकी आधा भी ठीक करने के लिए कृपापूर्वक नुस्खा लिख देने को पधारे है ?

चिकोटी से नरेन की हँसी थम गई। बोला—सच कह रहा हूं, खासा तमाशा है यह !

विजया बोली—तभी इतने खुश हो पडे हैं ?

नरेन का मुख मण्डल गम्भीर हो उठा। बोला—खुश हुआ हूँ ? हर्गिज नही। बेशक इस बात से इनकार नही कर सकता कि सुनकर पहले तो मजा आया था, लेकिन उसके बाद सच ही दुखी हुआ हूँ। विलास बाबू का मिजाज अच्छा नही है, ठीक है यह, नाहक ही नाराज होकर औरों का अपमान कर बैठते हैं लेकिन इसीलिए आप भी उतावली होकर अपमान की बात कर बैठें, यह भी तो अच्छा नही। सोच तो देखिए जरा, यह बात जाहिर हो जाय, तो भविष्य मे कितनी बडी लज्जा और क्षोभ का कारण होगी। यकीन कीजिए सुनकर सच ही मैं बडा दुखी हुआ हूँ। मेरे लिए आप दोनो मे ऐसी एक अप्रिय घटना घट जाने से—

उसके हृदय की पवित्रता पर विजया मन ही मन मुग्ध हो गई। फिर भी मजाक म बोली—लेकिन हँसी भी तो दबा नही पा रहे हैं। और खुद भी हँस पडी।

अब की जबरन जोरो का गम्भीर बनकर नरेन बोला, बार-बार ऐसा क्या सोचती ह आप ? वास्तव मे मैं दुखी हुआ हू लेकिन उस समय मैं आप लोगो के बारे मे कुछ नही जानता था।—कुछ देर चुप रह कर बोला—उसी दिन सारा कुछ समझा कर उनके पिताजी ने बताया—ईर्ष्या। दयाल बाबू ने भी कल यही कहा। सुन कर क्या शर्मिन्दगी हुई मुझे, कह नही सकता। लेकिन इतने लोगो म मुझ से ईर्ष्या करने का क्या है, यह भी तो नही समझ पाता। आप ब्रह्म समाज की है, जरूरत हो तो सबसे बात करती हैं, मुझसे भी बात की। इसमे उन्होने कौन सा ऐसा गुनाह देखा, यह मैं आज भी खोज कर न पा सका। खैर, आप लोग हमे माफ कीजिए और क्या तो कहते हैं, अभिनन्दन ! वही मैं

भी करता हूं। आप लोग सुखी हों।

अपने आचरण की चर्चा करते हुए भी उसने विजया के उस दिन के आचरण की बात न उठाई—विजया ने यह गौर किया, पर उसकी अन्तिम बात से यकायक उसकी आंख उमड़ आई। गर्दन फेरकर वह किसी प्रकार से अपने आंसू रोकने लगी।

उसके जवाब का इंतजार बिना किए ही नरेन ने पूछा—अच्छा यह तो कहिए, उस दिन कालीपदो से आपने माइक्रोसकोप क्यों भिजवाया था?

रुंधे स्वर को साफ करके विजया बोली—आपने खुद ही तो अपनी चीज वापस मांगी थी।

नरेन बोला—ठीक है, लेकिन दाम के बारे में नहीं कहलाया। फिर तो मेरा

विजया बोली—नहीं। बुखार में मुझ से भूल होगई थी। लेकिन उस भूल की सजा तो कुछ कम नहीं दी आपने।

नरेन लजा कर बोला—लेकिन कालीपदो ने कहा—

टोक कर विजया बोली—वह मैंने सुना है। लेकिन जो भी कहे, पर आपको उपहार देने की स्पर्द्धा मुझे हो सकती है, यह आपने कैसे यकीन किया? और सच ही ऐसा किया तो अपने हाथों क्यों नहीं सजा दी? मैंने आपका क्या बिगाड़ा था? कहते-कहते उसकी आवाज भर्रा गई।

नरेन ने लज्जित और चकित होकर देखा, विजया मुंह फेरकर खिड़की से बाहर देख रही है। मुंह नहीं नजर आया, नजर आई सिर्फ गले में की हीरे की कंठी थोड़ी-सी—रोशनी में अजीब चमक फैला रही थी दोनों कुछ देर चुप रहे। फिर नरेन बोला—रवैया मेरा ठीक नहीं हुआ, यह मैंने उसी समय समझा था लेकिन तब तक गाड़ी खुल गई थी। बेचारे कालीपदो का क्या दोष। उस पर मेरा बिगड़ना हर्गिज वाजिब न हुआ। फिर जरा देर चुप रह कर बोला—देखिए यह ईर्ष्या चीज जो कितनी बुरी है, अब मैंने भली तरह समझा है। वह सिर्फ अपने आप ही नहीं बढ़ती जाती, छूत की बीमारी की नाईं औरों पर भी हमला करने से बाज नहीं आती। अब मैं खूब समझता हूं, मुझ से ईर्ष्या करने का भ्रम विलास बाबू के लिए कुछ हो ही नहीं सकता।

उनके पिता ने भी इसके लिए दुख और लज्जा प्रकट की थी, परन्तु सुनकर शायद आप चकित हो कि मेरी अपनी भी कम गलती नही हुई।

विजया ने पलट कर पूछा—आपकी भूल कैसी ?

नरेन ने बड़ा सहज और स्वाभाविक जवाब दिया, नाहक ही मुझे वैसा करने से आपको सच ही क्लेश पहुचा था, यह तो आपकी बात से सब की समझ म आ गया था। उसके ऊपर से जब रासविहारी बाबू ने ले जाकर अपने बेटे की ईर्ष्या का जिक्र करते हुए मुझे दु ख न करने को कहा, तो मेरा दु ख एकाएक मानो बढ गया। जी में बार बार यही होने लगा, हो न हो कोई कारण जरूर है, नही तो यो ही कोई किसी से हिंसा नहीं करता। आज मैं आप से सच सच बता रहा हू, उसके बाद आठ दस दिनो तक चौबीस घण्टे में शायद तेईस घण्टे मैं आप ही का सोचा करता था। जभी तो कहा—अजीब खून की बीमारी है यह ! काम काज गया भाड मे—रात-दिन आपकी चिंता ही मन मे चक्कर काटने लगी। क्या जरूरत थी इसकी कहिये तो। और सिर्फ इतना ही ! दो तीन दिन खामखा इस रास्ते से मैं गया—सिर्फ आपको देखने के लिये ! कई दिना तक एक खासा पागल भूत मुझ पर सवार हो गया था !—कहकर वह हँसने लगा !

विजया ने मुँह उठाकर देखा नही, एक भी बात का जवाब नही दिया, चुपचाप उठी और बगल के दरवाजे से अ दर चली गई। एक जने के हाठो की हँसी पल मे बुझ गई। वह जिधर से गई उसी अँधेरे की तरफ अपलक देखता हुआ हक्का-बक्का सा नरेन सोचने लगा—अजाने फिर कौन सा कसूर कर बैठा।

लिहाजा जब बरे ने आकर खबर दी कि आप चले मत जायें आपकी चाय बन रही है, तो नरेन परेशान सा कह उठा—चाय की तो मुझे जरूरत नही।

लेकिन मा जी न आपका बठने के लिए कहा है। कह कर बरा चला गया। इसने भी नरेन को कम हैरान नही किया।

कोई प द्रह मिनट बाद नौकर से चाय और खुद भोजन की थाली लिये विजया आई। लाख कोशिश करके भी वह अपने चेहरे पर से रोने की

छाया पोछ नही पाई मद्धिम रोशनी मे यह शायद और किसी को दिखाई नहीं देता, लेकिन डाक्टर की अभ्यस्त आँखों से यह छिपा न रहा—तो भी अब वह अचानक कोई फतवा नहीं दे बैठा। थाड़े ही दिनो म बहुत कुछ मे सावधान होना उसन सीख लिया था। एक दिन लगभग अपरिचित होते हुए भी मन के मामूली कुतूहल और इच्छा की चचलता को दबा न पाने के कारण उसने विजया की ठोढी पकड ली थी,

आज अब वह दिन न रहा उसका। इसीलिये वह चुप ही रहा।

टेबिल पर चाय रखकर नौकर चला गया। उसी के पास भोजन की थाली रखकर विजया अपनी जगह जा बैठी। थाली खीचकर नरेन कुछ इस ढग से खाने लगा, मानो इसी का इन्तजार कर रहा था।

पाच-छे मिनट चुपचाप कटे। विजया ही पहले बोली। मौन का भार और न सह पाकर वह मानो जबरन ही हसकर बोली—हा आपने अपने उस पगले भूत की बात खत्म तो नही की ?

नरेन शायद और कुछ सोच रहा था। इसीलिए सिर उठाकर बोला—किसकी कह रही हैं आप ?

विजया बोली—वही उस पगले भूत की जो कई दिनो तक आप पर सवार हो गया था। उतर गया तो वह ?

अबकी नरेन भी मुडकर हँसा—हा उतर गया।

विजया बोली—खैर, जान बची लाखो पाए। वरना जानें और कब तक आप से घुड दौड करना फिरता ?

चाय का प्याला मुह से लगाते हुए नरेन ने सिर्फ कहा—हा।

विजया ने फिर कोई अच्छी सी बात कहनी चाही लेकिन अचानक कोई बात खोज न पाकर आकठ उच्छवसित दीर्घश्वास को दबाकर चुप रह गई। दूसरे के सिर से भूत उतर जाने के आनन्द को खीचते चल सकना उसके बूते से न बना।

कमरा फिर कुछ देर तक स्तब्ध रह गया। धीरे सुस्त चाय का प्याला खाली करके नरेन ने टेबिल पर रख दिया। जेब से घडी निकाल कर बोला—बस, दस मिनट हैं। मैं चला।

विजया ने धीमे से पूछा—कलकत्ता जाने की यही शायद अंतिम गाडी है ?

उठकर मर पर हैट रखते हुए बोला—एक और है जरूर, पर डेढ घंटे के बाद । तो चलता हूं, नमस्कार ।—कहकर उसने अपनी छडी सम्हाली और जरा तेजी से ही निकल पडा ।

२१

विलास ठीक समय पर कचहरी जाता और काम करके लौट जाता । खास कोई जरूरत पड जाती तो किसी को भेज कर विजया की राय लेता, लेकिन खुद नही जाता । विजया यह भी समझ गई थी कि बिना बुलाये वह नहीं आने का । लेकिन उसके सलूक मे पछतावा और चोट खाए अभिमान की वेदना के सिवा क्रोध की ज्वाला न थी सो विजया का भी गुस्सा ठंडा पड गया था ।

बल्कि अपने ही व्यवहार म मानो कैसी तो एक नाटकीयता का अनुभव करके उसे कभी कभी लज्जा हो आती । अक्सर उसे ऐसा लगता, न जानें कितने लोग इस पर हँसी मजाक कर रहे हैं । इसके सिवा जो आदमी सबकी आंखो मे सर्वेसर्वा बना हुआ था खास तौर से जमीदारी के सिलसिले म डाट-फटकार कर जि ह दुश्मन बना रखा था, उन सबकी निगाहो मे अचानक उसकी ऐसी हेठी करके विजया अपने जी मे सचमुच ही पीडा महसूस कर रही थी । पहले की स्थिति को न लौटा कर केवल इस घटना को किसी कदर अगर वह एक बार भी 'ना' कर द पाती, तो जी जाती । उसके मन की जब ऐसी स्थिति हो रही थी, ऐसे ही मे एक दिन तीसरे पहर कचहरी के बैरे न आकर खबर दी विलास बाबू मिलना चाहते हैं ।

बिल्कुल नई सी बात थी । विजया चिट्ठी लिख रही थी । नजर उठाकर बोली—आने को कह दो । अज्ञात आशंका से उसका मन धडकने लगा । लेकिन

विलास के अन्दर आते ही वह उठकर खडी हो गई। शात भाव से नमस्कार किया। कहा, आइए। विलास बैठ गया। बोला—काम की भीड से आ नही पाया था। तबीयत तो ठीक है?

गर्दन हिलाकर विजया ने कहा—हा।

वही दवा चल रही है?

विजया न इसका जवाब नही दिया। उस प्रश्न को न दुहरा कर विलास ने कहा—कल नए साल का पहला दिन है। मैं चाहता हू, कल सबको बुलाकर सवेरे जरा भगवान का भजन करें।

उसने अपने पिछले सवाल के लिए ज्यादा तग नही किया, इससे विजया के जी पर से एक भार उतर गया। वह खुश होकर बोली—यह तो बडी अच्छी बात है।

विलास बोला—लेकिन नाना कारणों से मन्दिर मे जाने की सुविधा नहीं हुई। अगर तुम्हे एतराज न हो तो, मेरे ख्याल, मे यही—

विजया तुरत राजी हो गई, बल्कि उत्साहित हो उठी। बोली—तो घर को जरा फूल-पत्तो से सजा दिया जाय, तो कैसा रहे? आपके यहाँ फूलों की कमी तो है नही—सबेरे ही अगर माली से कह दें—क्या ख्याल है? नही हो सकेगा?

विलास ने आनन्द का खास कोई आम्बर नही दिखाया। बोला ठीक है यही होगा। मैं सब ठीक कर दूँगा।

विजया कुछ देर चुप रही। फिर बोली—कल साल का पहला दिन है। मैं समझती हू, कुछ खाने पीने का आयोजन—

विलास ने इस प्रस्ताव का भी समथन किया और बताया, जाते हुए वह नायब से कह जायगा कि उपासना के बाद अच्छे-से जलपान का भी इतजाम जिसमें रहे। इधर उधर की दो चार बातों के बाद जब विलास चला गया तो बहुत दिनो के बाद विजया के मन म तृप्ति और उल्लास की दक्खिनी बयार बहने लगी। उस दिन की उस मुठभेड के बाद जो चीज अव्यक्त ग्लानि के रूप में उसे हर पल कष्ट दे रही थी, उसका भार कितना अधिक था, आज उससे छुटकारा पाकर उसने हलका जैसा अनुभव किया, शायद और कभी नहीं किया

था, इसीलिए आज दु ख के साथ उसने महसूस किया कि इन्हीं कुछ दिनों मे विलास पहले से दुबला हो गया है। अपमान और पछतावे की चोट ने उसकी प्रकृति को बदल दिया है, यह अपनी आखो से देखकर अनजानते ही विजया के एक दीर्घनिश्वास निकल पडा और वह मन ही मन रासबिहारी की उस दिन की बातो पर गौर करने लगी। भाषा, भाव-भगी, इशारा, सब प्रकार से यही दिखाया गया कि विलास उसे बहुत ही प्यार करता है लेकिन भूले भी कभी इस प्यार की बात को विजया के मन मे जगह नही मिलती। बल्कि जब साँझ के झुटपुट मे सूने घर मे उसका साथी विहीन मन छटपटाने लगता तो कल्पना के चुपचाप कदम बढा कर जो आदमी उसके पास आ बैठता, वह विलास नही, कोई और था। अलसाई दोपहरी मे जब जी नही लगता, सिलाई भी नही रुचती, विशाल मकान धूप से खाँ खाँ करता रहता, तो दूर भविष्य मे इस सूने घर गिरस्ती बसाने की जो स्निग्ध छवि उसकी आखो म धीरे धीरे जगती, उसमे विलास का कहीं जरा भी स्थान नहीं होता गोकि जो उसको सारी जगह ऐसे घेर बैठता, जीवन यात्रा के बीहड पथ पर सहायक या सहयोगी के रूप मे उसका मूल्य विलास से कहीं कम था। वह जैसा ही अनिपुण था, वैसा ही निरुपाय। मुसीबत म उससे कोई मदद ही नही मिल सकती। तो भी यह सोचकर आनन्द के आवेग से विजया का देह मन थर-थर कापने लगता कि उस निकम्मे के सारे अकाज का बाझा वह माथे मर ढोती चल रही है। विलास के चले जाने के बाद उसके मनोभाव मे आज भी जो कोई परिवतन हुआ, सो नहीं लेकिन आज बिना याचना के ही उसने विलास के दोष पर फिर से विचार का भार अपने हाथों ले लिया और उसके जिस स्वभाव का परिचय घटना चक्र से मिला था, वास्तव मे उसका स्वभाव उतना गिरा हुआ नहीं है, यह उसने बिना किसी से तक किये आप ही आप मान लिया। यहाँ तक कि अत्यन्त उदारता के साथ उसने अपने तई यह भी नहीं छिपाया कि विलास जैसी मानसिक अवस्था मे ससार के ज्यादातर लोगो का रवैया इमसे भिन्न नही होता। उसने प्यार किया है और प्यार के अपराध ने ही उसे लाछित और दण्डित किया है, बार-बार यही सोच कर उसने दया मिश्रित ममता से उसे माफ कर दिया।

सुबह जगते ही सुना, विलास बहुत पहले से ही,लोगो के साथ हाल की सजावट मे जुट पडा है। वह झटपट नीचे उतर आई। लजाते हुए कहा—मुझे बुलवा क्यो नही लिया ?

विलास स्निग्ध स्वर मे बोला—जरूरत क्या थी।

विजया जरा हँसकर बोली—इतनी निकम्मी हू मैं कि इसमे भी थोडी मदद नही कर सकती ! खैर, कहिए, मैं क्या करूँ ?

दिना बाद आज विलास हँसा। बोला—तुम सिफ यह देखती रहो कि हमसे भूल हो रही है या नही।

अच्छा, कहकर विजया एक कोच पर आ बैठी। कुछ ही देर मे पूछा—और खाने का इन्तजाम ?

विलास न मुडकर देखा। कहा, सब ठीक हो रहा है, चिन्ता मत करो।

तो मैं उसी तरफ जाऊँ तो कैसा ?

ठीक है। कहकर विलास फिर काम मे लग गया।

आठ बजते बजते सब ठीक-ठीक हो गया। इस बीच विजया कई बार आई गई छोटी मोटी बातो पर विलास की राय पूछी—कहा कोई सकोच नही हुआ। जानें कब अजाने ही दोनो के सचित विरोध की ग्लानि जाती रही थी और बातचीत का रास्ता इतना सहज और सुगम हो गया था कि दोनो मे से किसी ने शायद ख्याल ही नही किया।

विजया हस कर बोली—मुझे निकम्मी समझ कर आपने छाट दिया, मगर मैंने भी आपकी गलती निकाली है, कहे देती हू।

कुछ चकित सा होकर विलास ने कहा—निकम्मी तो हर्गिज नही सोचा, लेकिन भूल कैसी ?

विजया बोली—हम हैं तो कुल चार पाच जने, लेकिन भोजन का प्रबध कोई बीस आदमी का हो गया, पता है ?

विलास बोला—सो तो होगा। पिता जी ने अपने कुछ दोस्तो को कहा है। कौन कौन आएँगे, यह तो ठीक मालूम नही।

विजया बहुत ही अचरज म पड गई। बोली—कहा, यह तो मुझे नहीं बताया ?

विलास खुद भी अचरज में आ गया। पूछा—कल मेरे यहां से जाने के बाद पिता जी ने तुम्हें पत्र नहीं भेजा ?

नहीं।

लेकिन उन्होंने तो कहा—विलास थम गया।

विजया ने पूछा—क्या कहा ?

विलास कुछ क्षण चुप रह कर बोला—शायद हो कि मुझसे ही सुनने में भूल हुई हो। चिट्ठी लिखने की सोच फिर शायद भूल गए।

विजया ने और कुछ नहीं पूछा। लेकिन उसके अन्दर की प्रसन्नता की चाँदनी एकाएक बदली से ढँक गई।

आधे घण्टे के बाद रासबिहारी स्वयं आ पहुंचे और नौ बजते बजते उनके आमन्त्रित मित्र एक एक कर आने लगे। इनमें से सभी ब्राह्म समाज के नहीं थे, शायद रासबिहारी के एकांत अनुरोध को न टाल सकने के कारण आने को मजबूर हुए थे।

रासबिहारी ने सबका सादर स्वागत किया और विजया से जिनका साक्षात् परिचय नहीं था, परिचय करते हुए उस घनिष्ट सम्बन्ध का इशारा करने में भी न चूके, जो निकट भविष्य में उसका उनसे होने वाला था। विजया ने धीमे से स्वागत करके उन्हें बैठने का अनुरोध किया। वह जब इन शिष्टाचारों के निर्वाह में लगी थी, तो पास ही बगीचे की पगडण्डी पर दयाल बाबू दिखाई दिये। अकेले नहीं, आज एक अपरिचित तरुणी भी उनके साथ था। देखने में वह खूबसूरत थी, उम्र में विजया से शायद कुछ बड़ी हो। करीब आकर दयाल ने उससे अपनी भानजी बताया। नाम नलिनी। कलकत्ते के कालेज में बी० ए० में पढ़ती है। गर्मी की छुट्टियाँ अभी शुरू नहीं हुई थीं, लेकिन मामी की सेवा सुश्रूषा के ख्याल से कुछ पहले ही, दो दिन हुए आ गई है और गर्मी की छुट्टियाँ यहीं बिता कर जायगी।

यह नहीं कि नलिनी को विजया ने कलकत्ते में बिल्कुल देखा ही नहीं, परिचय नहीं था। जो हो, इतने जाने-अजाने पुरुषों के बीच वही आज उसको सबसे अंतरंग लगी। विजया ने बांह फैलाकर उसका स्वागत किया और अन्दर ले गई। पास बिठाकर गपशप करने लगी।

उपासना साढ़े नौ बजे शुरू होने को थी। अभी भी कुछ समय था, इसलिए सब बाहर के बरामदे में खड़े खड़े बातें कर रहे थे। ऐसे में घर के अन्दर रासबिहारी की ऊँची आवाज सुनाई पड़ी। बड़े आदर से वे किसी को कह रहे थे—आओ बेटे, आओ। इतना काम रहते समय निकाल कर तुम आ सकोगे, यह आशा नहीं थी मुझे।

आखिर ये सम्मानित भले आदमी हैं कौन, यह जानने के लिए विजया ने सिर उठाया कि देखा, सामने नरेन है।

रासबिहारी ने उन्हें न्योता दिया और वह इसीलिए इस घर में आया। बात ऐसी अनहोनी सी थी कि विजया की सारी चिन्ता शक्ति ही उलझ गई। वह फिर सिर उठा कर उधर देख नहीं सकी, लेकिन विलासबिहारी की विनीत स्वागतवाणी सुनाई पड़ी और कुछ ही क्षण में दोनों को लेकर रासबिहारी कमरे के बीच में आ खड़े हुए। साथ साथ और भी बहुत लोग आए। बूढ़े ने शान्त गम्भीर स्वर में इन दोनों युवकों को सबोधन करके कहा—अपने अपने पिता के रिश्ते से तुम दोनों भाई होते हो, आज खास तौर से यह बात मैं तुमसे कहना चाहता हूँ। वनमाली गये, जगदीश भी जा चुके—अब मेरी भी बुलाहट होगी। ससार में शरीर के सिवाय हम तीनों का कुछ भी भिन्न न था, आज के छोकरे तुम लोग शायद इसे न समझो—समझना सम्भव भी नहीं—मैं समझाना भी नहीं चाहता। मैं आज नये साल के इस शुभ दिन मे तुमसे सिर्फ यही अनुरोध करना चाहता हूँ कि अपने गृह विच्छेद की स्याही से इस बूढ़े के इन बाकी के दिनों को अँधेरा मत कर दो। उनकी आखिरी बात काँप कर ठीक मानो रुलाई से रुँध गई। नरेन से रहा न गया। आगे बढ़कर उसने विलास का एक हाथ अपने दायें हाथ में लेकर आवेग के साथ कहा—विलास बाबू, आप मेरी सारी भूलों को माफ कर दें। मैं माफी माँगता हूँ।

जवाब मे हाथ छुड़ा कर विलास ने जोर से नरेन को गले लगा लिया। कहा भूल मैंने की है नरेन। तुम मुझे माफ करो।

बूढ़े रासबिहारी मुँदी आँखों काँपते कण्ठ से बोले—हे सर्व शक्तिमान परमपिता परमेश्वर! इस दया, इस करुणा के लिए तुम्हारे पाद पद्मों में मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।—उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर कपाल से लगाया और

चादर के छोर से आँखें पोछते हुए बोले—आज का यह शुभ मुहूर्त तुम दोनों के जीवन में अक्षय हो। आप अब भी आशीर्वाद करें। यह कहकर वे विस्मय-विह्वल अतिथियों की ओर देखने लगे।

दयाल के सिवा कोई कुछ नहीं जानते थे, फलस्वरूप इस मर्मस्पर्शी करुण अनुष्ठान का असली मतलब समझ न पाने के कारण सच ही उनके अचरज का कोई हद्दोहिसाब न था। रासबिहारी पल भर में इसे भाँप गए। हल्का हँसकर बोल उठे, वह कैसे कहते हैं न, दुधारी तलवार, आते भी घाव, जाते भी घाव। मेरी भी यही हालत थी। यह भी मेरा लड़का, वह भी मेरा लड़का—और, आँखों के इशारे से नरेन तथा विलास को दिखाकर कहा—अपने दाएँ हाथ की जैसी पीड़ा, बाएँ की भी वैसी ही। लेकिन आप लोगों की दया से आज मेरा बड़ा ही शुभ दिन है, बड़े ही आनन्द का दिन। मैं और क्या कहूँ!

अन्दरूनी बात को न समझते हुए भी जवाब में सबने हर्षसूचक एक प्रकार की अस्फुट ध्वनि की।

रासबिहारी ने गर्दन का जरा आड़े करके कपड़े की कोर से फिर आँखें पोछ कर पास का कुर्सी पर चुपचाप जा बैठे। उस स्निग्ध गम्भीर मुखड़े को देखकर किसी को यह समझना बाकी न रह गया कि अनिर्वचनीय भावों से उनका हृदय इस कदर भर उठा है कि वहाँ वाक्य के लिए तिल भर भी जगह नहीं रह गई है। पकी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए दयाल उठ खड़े हुए और उपासना के पहले भूमिका के तौर पर बोले—जहाँ विरुद्ध हृदय मिलते हैं, वहाँ भगवान का आसन बिछता है। लिहाजा आज यहाँ परमपिता के आविर्भाव में दुविधा करने की गुंजाइश नहीं।

इसके बाद उन्होंने नए साल के पहले दिन प्रायः पन्द्रह मिनट की एक अच्छी सी उपासना की। उनको निश्छल विश्वास और आन्तरिक भक्ति थी, इसलिए जो कुछ कहा, सब सबको सत्य और मधुर ही प्रतीत हुआ। सबकी पलकों पर सफलता का आभास दिखाई दिया केवल रासबिहारी की आँखों से आँसू की बेरोक धारा बहने लगी। वे चेत में हैं या अचेत हैं, देर तक यही नहीं समझ में आया।

और एक जने के मन के भाव का पता न चल सका—वह थी विजया। शुरू से आखिर तक वह आँखें नीची किए पत्थर की मूर्ति की नाईं स्थिर बैठी रही। जब सिर उठाया, तो उसका चेहरा अस्वाभाविक रूप से पत्थर की तरह ही सादा दिखाई पड़ा।

दयाल की भक्ति गद् गद् ध्वनि की प्रतिध्वनि उस समय बहुतों के हृदय में भङ्कृत हो रही थी। ऐसे में रासबिहारी ने आँखें खोली और खड़े होकर लगभग रोने जैसा बोले—सुकृम साधना का वह बल नहीं, लेकिन दयाल का महा वाक्य कितना बड़ा सत्य है, आज मैंने उसकी उपलब्धि की। सम्मिलत हृदय के संगम कर उस एकमात्र अद्वितीय परब्रह्म का आविर्भाव होता है, अपने हृदय में आज इसे प्रत्यक्ष करके मैं सदा के लिए धन्य धन्य हो गया—और, आगे बढ़कर दयाल को अपनी छाती से चिपका कर काँपते हुए स्वर में बोले—दयाल, भाई मेरे, यह सिर्फ तुम्हारे पुण्य, तुम्हारे ही आशीर्वाद का फल है।

दयाल की आँखें छलछला आईं। उनसे कुछ कहते न बना, चुप खड़े रहे।

बगल वाले कमरे में जलपान का भरपूर प्रबन्ध था। विलास ने जैसे ही इसका इशारा किया, रासबिहारी ने बाधा देकर अतिथियों को लक्ष्य करके कहा, आप लोगों से आज एक और आशीर्वाद की भीख माँगता हूँ। बनमाली जिन्दा होते तो अपनी बेटी के ब्याह की बात खुद वही आपसे कहते, मुझे नहीं कहनी पड़ती।—पर अभी वह भार मुझी पर पड़ा है। मैं इस समय वर-कन्या का पिता हूँ। इसी महीने के आखिरी हफ्ते में मैंने पूर्णिमा तिथि को विवाह का दिन तै किया है—आप लोग हृदय से आशीर्वाद दें कि यह शुभ कार्य निर्विघ्न सपन्न हो—। यह कहकर उन्होंने एक जोड़ा सोने का कंगन जेब से निकाल कर दयाल के हाथ पर रख दिया।

दयाल कंगन लेकर विजया की ओर बढ़े। हाथ बढ़ाकर बोले—शुभ काम की सूचना से मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारा कल्याण चाहता हूँ, हाथ बढ़ाओ बिटिया।

लेकिन उस सिर गाड़े मूर्ति-सी बैठी रमणी की तरफ से कोई चेष्टा नहीं हुई। दयाल ने अपने अनुरोध को दुहराया। फिर भी वह उसी तरह बैठी

रही। नलिनी पास ही बैठी थी, उसने अपने मामा का यह संकट समझा और हँसकर विजया की दोनों कलाई उसने बढ़ा दी और आशीर्वाद के स्वर्णवलय समझ कर मूर्छित सी बेवस नारी के अवश दोनों हाथों में दयाल ने एक-एक करके अत्याचार की हथकडी डाल दी।

लेकिन किसी ने कुछ न समझा, बल्कि इसे मधुर लज्जा समझ, स्वाभाविक और संगत जान सब खिल पडे और देखते ही देखते शुभ-कामनाओं के कल-गुंजन से घर मुखरित हो उठा।

खाना-पीना हो चुका। देर हो रही थी, इसलिए एक-एक करके सब रुखसत होने लगे इस समय किस तरह से अपने को जब्त करके विजया अतिथियों का सम्मान और मर्यादा रख सकी, यह अन्तर्यामी के सिवा और जिस एक आदमी से छिपा न रहा, वह था रासविहारी। मगर उन्होंने इसका आभास तक न होने दिया। खाने के बाद एक लौंग मुँह में डालते हुये बोले—तो मैं चला बेटी। बूढ़ा आदमी। धूप बढ़ जायेगी तो चलना मुश्किल। यह कह कर फिर एक बार आशीर्वाद दिया और छाता खोलकर निकल पडे।

सब जा चुके थे। सिर्फ विजया और नलिनी बरामदे के एक ओर खडी बात कर रही थी। विजया बोली—आपसे परिचय होने से कितनी खुशी हुई, कह नहीं सकती। यहाँ जब से आई हूं, बिल्कुल अकेली पड गई हूँ। ऐसी कोई नहीं कि दो बातें कर सकूँ। आप जब चाहें, जब सुविधा हो, आया करें।

नलिनी खुशी-खुशी राजी हुई।

विजया बोली शायद आज उस बेला मैं भी आपकी मामीजी को देखने आऊँ। लेकिन तुरन्त धूप की ओर देखकर परेशान सी बोल उठी—दयाल बाबू जरूर कचहरी पहुँच गये, उन्हें बुलवा भेजूँ, कहकर जैसे ही वह बढी कि रोक कर नलिनी ने कहा—वे तो अभी घर जायेंगे, नहीं, एक बारगी शाम को ही लौटेंगे।

विजया शर्मा कर बोली—तो यह मुझसे पहले क्यों नहीं बताया? मैं दरबान को बुला देती हूं। वह आपको

नलिनी बोली, दरबान को बुलाने की जरूरत नहीं, मैं नरेन बाबू की राह देख रही हूँ। वे अपने मामा से मिलने गये हैं—तुरन्त आ जायेंगे।

विजया चकित होकर बोली, अच्छा, उनसे आपका पहले से परिचय था क्या ? मुझे तो नहीं मालूम था।

नलिनी बोली—परिचय नहीं था। मामा की चिट्ठी पाकर परसा स्टेशन आई, तो देखा खड़े हैं। उन्हीं के साथ आई।

विजया बोली—ओ, यह बात है।

नलिनी बोली, हाँ। मगर आदमी कितने अच्छे हैं। दो ही दिन म जमाने के अपने से हो गये हैं। अभी हमारे ही यहाँ नहायेंगे, खायेंगे फिर तीसरे पहर की गाड़ी से कलकत्ते जायेंगे, यही तै हुआ है। मेरी मामी जी भी उन्हें लड़के जैसा प्यार करती है।

विजया गदन हिलाकर बोली, हाँ। बड़े अच्छे आदमी हैं।

नलिनी कहने लगी, उनसे कभी किसी का मनमुटाव भी हो सकता है, यह आज अपना आँखो न देखा होता तो मैं किसी तरह यकीन ही नही कर पाती। मुझे बड़ी खुशी हुई कि विलास बाबू से आज उनका मेल हो गया लेकिन उनके पिता जी भी कितने अच्छे आदमी हैं। मेरा ख्याल है, अपने समाज के हर किसी को उन्हीं जैसा होने की कोशिश करनी चाहिये। जिस दिन रासविहारी बाबू का आदश अपने समाज के घर घर प्रतिष्ठित होगा, उसी दिन समझूँगी कि अपना ब्राह्मधम सफल हुआ, साथक हुआ। आपका क्या ख्याल है ? ठीक है न ?

थोड़ी ही दूर पर हाथ मे टोपी सम्हाले तेजी से इधर ही आता हुआ नरेन दिखाई पड़ा। विजया उसक सवाल को टाल गई और उधर की ओर दिखाती हुई बोली—लीजिये, वे आ रहे हैं।

नरेन करीब आया। विजया को लक्ष्य करके बोला—अच्छा इसी बीच म दोना मे घनिष्टता भी हो गई। सचमुच, साल के पहले दिन मेरा सुप्रभात समझो। सवेरा बड़ा अच्छा कटा। उम्मीद बँधती है कि यह साल अच्छा ही कटेगा। मगर आप ऐसी फीकी पड़ी सी क्यो लग रही है, कहिये तो ?

विजया आजिजी से बोली—आखिर एक दिन म यह सवाल कितनी बार पूछना चाहिए, सो ता कहिय ?

नरेन ने हँसकर कहा—और एक बार पूछ चुका हूँ, क्यों ? मगर उससे क्या हो गया। आप झट से इतनी बिगड क्यों जाती हैं ? यह तो मेरी पुरानी आदत है। और, वह हँसने लगा।

विजया किसी तरह से अपनी हँसी को रोक कर बनावटी गंभीरता से बोली, इस विषय मे हर कोई क्या आप जैसा निर्दोष हो सकता है ? फिर भी देखिए, कालोपदा जैसे ऐसे भी निंदुक हैं जो आप जसे साधु को भी बिगडैल कहते हैं।

कालीपदो का नाम सुनकर नरेन ठठाकर हँस पडा। हँसी रुक जाने पर बोला, आप बेहिसाब रूठने वाली हैं, किसी भी हालत मे किसी का कसूर माफ नहीं कर सकती। इस ऐसे भी लोग से आपका मतलब और किनसे है ? कालीपदो और आप, यही तो ?

विजया ने सिर हिलाकर कहा—और स्टेशन मे जिन जिन लोगों ने देखा, वे भी।

नरेन ने कहा—और ?

विजया बोली—और जिन्होंने सुना, वे भी।

नरेन बोला—फिर तो यों कहिए कि मेरे बारे मे राज भर के लोगों की यही राय है ?

विजया अपनी उस गंभीरता को कायम रखकर ही बोली—हां, हम सभी की यही राय है।

नरेन बोला—धन्यवाद। अब आपके बारे में लोगों की क्या राय है, सो बताइये।—कहकर हँसने लगा।

इसके इशारे से विजया का चेहरा तमतमा उठा। लेकिन दूसरे ही क्षण वह हँसकर बोली, आप अपनी बडाई नहीं करना चाहिये, पाप होता है। वह बल्कि आप बताइए। लेकिन अभी नहीं नहाने खाने के बाद। देर भी तो काफी हो चुकी, वह काम भी यहीं निबटा लें, तो न हो ? उसने नलिनी की तरफ ताका।

नलिनी बोली—लेकिन मामी जी जो इंतजार करती रह जाएँगी ?

विजया ने कहा—मैं आदमी से उन्हें कहला भेजती हूँ।

नलिनी कुण्ठित-सी हुई। कहा, मुझे जाना ही पड़ेगा। बीमार ठहरी विचारी, सारी दोपहर कोई पास न होगा, तो कष्ट होगा।

कहना वाजिब था, लिहाजा जिद करते न बना। लेकिन उसकी ओर ताक कर जानें किस ख्याल से तो नलिनी बोल उठी—आप न हो तो यहीं नहाएँ-खाएँ नरेन बाबू, मामी जी को मैं खबर कर दूँगी। हां, जाने के पहले उनसे मिलने आइएगा।

और, आपने मुझे ऐसा एहसान फरामोश नीच समझा कि इस धूप में मैं आपको अकेली छोड़ दूँ?—इसके बाद विजया की ओर देखते हुए नरेन बोला, आपके पास तो एक अच्छी सी दावत बाकी है ही, उसी दिन होगा जरा सवेरे-सवेरे पहुंच कर इस यौते को भी पूरने की कोशिश करूँगा। तो नमस्कार। नलिनी से कहा—बस, और देर न करें। उसने अपनी टोपी सिर पर रख ली।

नलिनी उतरकर करीब गई। पर और एक जने जो काठ सी खड़ी रही, उसकी दोनों आखों से धार चढ़ाई छुरी-सी चमक छिटकने लगी—पहले दोनों में से किसी ने नहीं देखा। देखा होता तो शायद दो एक कदम आगे बढ़कर ही नरेन फिर पीछे मुड़कर हँसते हुए यह कहने का साहस हर्गिज नहीं कर सकता कि अच्छा, एक काम करें तो न हो? जो चीज शुरू से ही अनर्थों की जड़ रही है जिसके लिए इलाके भर मे अपनी बदनामी है, आज के इस आनन्द के दिन में वह मुझी को इनाम मे क्यों नही दे देतीं? रुपये दो सौ कल या परसों मैं भेज दूँगा। इतना बोल कर उसने फिर हँसना चाहा, लेकिन उत्साह के अभाव में बना नहीं। बल्कि जवाब मे उधर से एक बारगी अप्रत्याशित और बड़ा ही कड़ा जवाब मिला। विजया ने कहा, कीमत लेकर कोई चीज देने को मैं उपहार नही, बेचना कहती हूँ। ऐसा उपहार देकर आप खुश हो सकते हैं, लेकिन आपकी शिक्षा कुछ और तरह की है। सो आज खुशी के दिन उसे नहीं बेचना चाहती।

इस आघात की कठोरता से नरेन ठक् रह गया। एक तो यों ही वह विजया के स्वभाव का कोई ठीक ठिकाना नहीं पाता था, तिसपर आज तो उसके जी में भूख की आग सी जल रही थी—सो उसकी अचानक जो आँच निकल आई, नरेन उसे पहचान न सका। वह जरा देर रूखे चेहरे की तरफ चुपचाप

देखता रहा, फिर बड़ी पीड़ा के साथ बोला—मैं अपनी गई-बीती हालत को बात भूल भी नहीं गया हूँ और उसे छिपाने की चेष्टा नहीं की है कि आप उसका याद दिला रही है।

उसने नलिनी को दिखाते हुए कहा, मैं इन्हें भी सारा किस्सा बता चुका हूँ। पिता जी बड़ी तकलीफ में रहकर गुजरे। उनके मरने के बाद घर-द्वार, जो भी जायदाद यहाँ थी, सब कर्ज के कारण बिक गई—मैंने किसी से कुछ नहीं छिपाया। मैंने उपहार दिया है, ऐसा तो कहा नहीं। अच्छा, आप ही कहें, नहीं कहा है यह सब ?

नर्मा कर नलिनी ने हामी भरी—हाँ।

विजया का चेहरा दुःख, लज्जा, क्षोभ से विवर्ण हो उठा—वह विह्वल सी सिर्फ उन दोनों की ओर देखती रह गई।

उसकी उस अपरिसीम वेदना को मथते हुए मलिन मुँह लिए नरेन ने फिर कहा—मेरी बात पर आप प्रायः बहुत बिगड़ उठती हैं। शायद यह सोचती हो कि अपनी अवस्था को तडप कर मैं अपने को आप लोगों को बारबार बताना चाहता हूँ—हो भी सकता है, हर बात में अपना वजन ठीक नहीं रख सकना—लेकिन वह मेरे सामने स्वभाव का दोष है। लेकिन खैर, कोई असम्मान किया हो तो मुझे माफ करें। और, मुँह फेर कर चल पड़ा।

२२

— रास्ते भर उन दोनों में यही बात होती रही। नलिनी ने पूछा, क्या उपहार देने की कह रहे थे ?

थके हुए स्वर में नरेन बोला—फिर कभी बताऊँगा, आज नहीं।

बाग के उस पुल के पास जाकर नरेन सहसा रुक गया। बोला—आज तो मुझे माफ करना होगा, मैं लौट जाता हूँ। लेकिन नलिनी को विस्मय से अभिभूत देखकर बोला—यों एकाएक लौट जाना कितना बड़ा जुल्म हो रहा

हैं, वह मैं जानता हूँ। फिर भी मुझे माफ करना पड़ेगा—आज मैं किसी भी हालत मे न जा सकूँगा। अपनी मामी जी से कह देंगी, फिर कभी आकर मैं

उसके इस आकस्मिक बदल जाने से नलिनी को जितना आश्चय हुआ था, उससे कही ज्यादा हुआ उसकी आवाज सुनकर और उसका चेहरा देख कर। इसीलिए उसने और ज्यादा आग्रह नही किया। सिर्फ इतना ही बोली, आपने खाना भी तो नही खाया अब फिर कब आएँगे।

परसो आने की कोशिश करूँगा। यह कहकर वह जिधर से आया था, उसी राह स्टेशन की ओर तेजी से चल दिया।

बँहार लगभग पार कर चुका था कि देखा कोई लडका हाथ ऊँचा किये जी जान से उसकी तरफ दौडा आ रहा था। वह उसी के लिए दौडा आ रहा है और हाथ के इशारे से उसे रुकन को कह रहा है, यह साचकर नरेन रुक गया। थोडी ही देर मे परेश आ पहुचा। बोला—तुम्हे मा जी ने बुला भेजा है। चलो।

मुझे ?

हि—चलो न।

नरेन ने फिर खडा रह कर सन्देह के स्वर म कहा—तू समझ नही पाया परेश—मुझे नही।

जोरो से सिर हिलाकर परेश बोला—हि—तुम्ही को। तुम्हार सर पर साहब की टोपी जो है। चलो।

नरेन फिर कुछ देर चुप रहा। पूछा—तेरी माँ जी ने क्या कहा तुमसे ?

परेश बोला—मा जी दौड कर ऊपर की सीढी छत से नीचे आई—बोलीं—परेश, जरा दौड कर जा, उस बाबू को सीधे यहाँ पकड ला। कहा—सर पर साहब की टोपी है—जा, भागकर आ, तुझे बढ़िया-सा एक लट्टू ले दूँगी।—चलो न।

अब उसकी परेशानी का मतलब समझ म आया। लट्टू के लोभ से वह इस कडी धूप मे इजन की रफ्तार से दौडा आया है। उसे साथ ले जाए बिना

न लौटेगा। एक बार जी मे आया कि अपनी ही ओर से उसे लट्टे का दाम देकर बिदा कर दे। लेकिन आज ही उसके इस तरह से बुलाने का कारण क्या हो सकता है—यह कुतूहल वह रोक न सका। फिर भी जाना ठीक होगा या नही, यह तै करने मे कुछ और देर लग गई और तै भी कुछ न हो पाया, लेकिन आखिरकार अनिश्चित पैर उसके उसी ओर धीरे धीरे बढने लगे। तमाम राह वह मन मे बुलाने के कारण को ढूँढने म जान खपाता रहा, लेकिन यह उसकी नजर मे न आया कि बुलाना ही सबसे बडा कारण है। बाहर के कमरे मे कदम रखते ही विजया सामने जा खडी हुई। दो गीली और उत्सुक आँखो से उसे देखते हुए तीखे स्वर मे बोली, बिना खाए, पीये इस धूप मे बडे निकल जो पडे ? मैं नाहक ही बिगडती हूँ, मैं बडी बुरी हूँ—और खुद ?

नरेन बडे अचरज से बोला—यानी ? किसने कहा, आप बुरी हैं आपसे यह सब किसने कहा ?

विजया के होठ कापने लगे। बोली—आपने कहा है। आपने नलिनी के सामने मेरा इस तरह से अपमान क्या किया ? अपमान भी मेरा ही किया और मुझी को सजा देने के ख्याल से बिना खाए-पीये चले जा रहे है ? मैंने क्या बिगाडा है आपका ? कहते कहते उसकी आँखें डबडबा आई। उसी को सम्हाल लेने के लिए ही शायद वह उधर की खिडकी पर जाकर बाहर की ओर देखती हुई इधर पीठ करके खडी हो गई। नरेन हक्का बक्का सा खडा रह गया। इस तोहमत का कहा कौन सा जवाब है जैसे यह ढूढे न मिला, वैसे ही यह भी न सोच पाया कि इसका कारण क्या है।

बैरा आकर बता गया कि नहाने का पानी रख दिया है। विजया ने मुडकर शांत भाव से कहा, देर मत कीजिए, जाइये।

नहाकर नरेन खाने बैठा। हाथ मे पखा लिए जब विजया उसके पास आकर बैठ गई, तो छिपे तौर से उसके सर्वांग का झकझोरती हुई लज्जा की आँधी सी बह गई। झलने का तैयार हुई, तो नरेन ने बडे सकाच से कहा—पखा झलने की जरूरत नहीं, आप रख दीजिए उसे।

विजया मुस्कराकर बोली—आपको न हो जरूरत, मुझे है। पिताजी अक्सर कहा करते थे, आदमी को कभी या ही बैठे नहो रहना चाहिए।

नरेन ने पूछा—आपने भी तो अभी खाया नहीं है ?

विजया बोली—नही। मर्दों के पहने हमे खाना भी नहीं चाहिये।

नरेन खुश होकर बोला—अच्छा, ब्राह्म होने के बावजूद आपका आचार व्यवहार तो हम लोगो जैसा ही है।

विजया ने यह नहीं बताया कि बहुत से कर्म-ब्राह्म परिवार म ऐसा नही, बल्कि ठीक उलटा हाता है। केवल उसके पिता ही अपने घर हिंदू व्यवहार कायम रख गए थे। उसने बताया बल्कि यह कि इसमे अचरज की ता कोई बात नही। हम न तो विलायत से ही आए हैं और न ही हमे काबुल से ही आचार व्यवहार मँगवाना पडा है। ऐसा न हा जभी ताज्जुब की बात हाती।

दरवाजे पर से नौकर ने इत्तला दी—माँ जी, सरकार बाबू खाता बही लिए नीचे खडे हैं। क्या उन्हे अभी वापिस जाने को कह दूँ ?

विजया ने गदन हिलाई—हा। आज अब देखने की फुसत नही। कह दो कल लाएँ।

नौकर चला गया, तो नरेन ने विजया की तरफ नजर उठाकर देखते हुए कहा, यही मुझे सबसे अच्छा लगता है।

यही क्या ?

नौकरों का यह पुकारना। कहकर वह हँसते हुए बोला, आप ब्राह्म-महिला भी है आलोक प्राप्त भी और खास तौर से बडे आदमी भी। ऐसे आलोक प्राप्त बहुत से परिवार मे आजकल मुझे इलाज के सिलसिले मे जाना पडता है। उन परिवारो मे नौकर चाकर महिलाओं को मेमसाहब कहा करते हैं। सच्ची मेम साहबें उन्हे जिस निगाह से देखती हैं, चूंकि वह मालूम है, इसलिए वेतनभोगी नौकरों से मेमसाहब कहला कर अपनी आत्म मर्यादा बनाये रखती हैं।—और परिहास जैसा हा हा करके उसने कमरे को गुंजा दिया। विजया खुद भी हँस पडी। नरेन की हँसी रुकी तो वह फिर बोला—जैसे, नौकर-नौकरानियो के मा जी कहकर पुकारने के बजाय मेमसाहब कहना ज्यादा इज्जत का हो। पहले दिन तो मैं समझ ही नही सका कि बैरा मेमसाहब कहता किसे है। नौकर ने कहा क्या, जानती है ? कहा मैंने बहुत से साहबो के यहाँ काम किया है, वास्तव में मेमसाहब कहते किसे हैं, यह मुझे खूब मालूम है।

मगर करूँ क्या डाक्टर साहब ? नए दरबान ने मालकिन को माँ-जी कह दिया था, इसलिए मेमसाहब ने उसे एक रुपया जुर्माना कर दिया। गनीमत कहिये कि नौकरी बच गई ! इतना तो बिगड़ीं। अच्छा आपने तो ऐसा बहुत देखा होगा, है न ?

हँसकर विजया ने गर्दन हिलाई।

नरेन बोला—एक दिन मुझे यह देखना होगा कि इन मेमसाहबों के बच्चे माँ को माँ कहते हैं या मेमसाहब। और फिर अपने मजाक की खुशी में हँसकर उसने जैसे आसमान सर पर उठा लेने की तैयारी की।

विजया ने मुस्कराकर कहा—खा पी कर दिन भर दूसरों की चर्चा का मजा लें, मुझे कोई ऐतराज नहीं, लेकिन आज मुझे खाने न देंगे क्या ?

शर्मा कर जल्दी-जल्दी नरेन दो चार कौर निगल गया और फिर सब भूल गया। बोला—आखिर मैं भी तो चार पाँच साल विलायत रहा लेकिन ये देशी साहब

तर्जनी उठा कर शासन करने के ढंग से विजया बोली—फिर पराई निन्दा।

अच्छा, बस। कहकर वह फिर खाने लगा। और तुरन्त बोला—लेकिन अब और नहीं खाया जाता

विजया बोली—वाह, कुछ भी तो नहीं खाया ! उँहूँ, अभी नहीं उठ सकते। न हो पराई निन्दा करते-करते ही अनमना होकर खाएँ। मैं कुछ न कहूँगी।

नरेन हँसना चाह रहा था कि सहसा गंभीर हो उठा। बोला—आप इसी में कह रही हैं कि खाना नहीं हुआ—कलकत्ते का मेरा रोज का खाना देखें तो आप दंग रह जाएँ। देख नहीं रही हैं इन्हीं कै महीनों में किस कदर दुबला हो गया हूँ। मेरे डेरे का रसोइया जैसा पाजी है, वैसा ही बदमाश है कबख्त नौकर। सुबह सुबह पका चुका कर कहाँ चल देता है, ठिकाना नहीं—मुझे लौटने में कभी दो बज जाते हैं, कभी चार भी। वही ठण्डा खाना। दूध कभी बिल्ली पी जाती है, कभी खिड़की में से घुसकर कौआ सब बिखेर देता है। देखते ही घृणा होती है। आधे दिन तो खाना ही नहीं नसीब होता।

गुस्से से विजया का चेहरा लाल हो उठा—बोली—ऐसे नौकर चाकरों को निकाल बाहर नहीं करते ? अपने डेरे में, इतने रुपये कमाने के बाद भी अगर इतनी तकलीफ है तो नौकरी करने का कौन सा लाभ है ?

नरेन बोला, एक हिसाब से आपका कहना ठीक है। एक दिन बक्स में से किसने तो दो सौ रुपये चुरा लिये एक दिन खुद ही कहां तो सौ सौ के दो नोट भुला आया। अन्यमनस्क आदमी को तो कदम कदम पर मुसीबत। जरा रुक कर बोला—सहते-सहते लेकिन कष्ट का आदी हो गया हूं, अब वैसा नहीं खलता। सिर्फ भूख लगने पर खाने की तकलीफ कभी-कभी असह्य हो उठती है।

विजया सिर झुकाए चुप रही। नरेन कहने लगा, सच पूछिये तो नौकरी मुझे अच्छी भी नहीं लगती, मुझसे करते भी नहीं बनती। जरूरत भी बड़ी मामूली है अपनी—आप जैसा कोई बड़ा आदमी दोनों जून दो मुट्ठी खाने को दे देता और मैं अपनी धुन में लगा रह पाता तो और कुछ भी न चाहता। लेकिन वैसे बड़े आदमी क्या हैं अब ? कहकर फिर उसने हँसी का एक ऊँचा हलकोरा उठाया। विजया पहले सी ही सिर झुकाए बैठी रही। नरेन बोला लेकिन आपके पिता जिन्दा रहे होते तो शायद मेरा बड़ा उपकार होता—वे जरूर मुझे इस टुकड़खोरी से रिहाई दिलाते।

उत्सुक आँखों उसे देखकर विजया ने पूछा—यह आपने कैसे जाना ? आप तो उन्हें पहचानते भी न थे ?

नरेन बोला—नहीं। मैंने भी उन्हें कभी नहीं देखा, उन्होंने भी शायद मुझे कभी नहीं देखा। फिर भी वे मुझे बहुत स्नेह करते थे। पता है आपको, मुझे रुपया देकर विलायत किसने भेजा था ? उन्होंने ही। अच्छा, हमारे कर्ज के बारे में उन्होंने क्या आपसे कभी कुछ न कहा ?

विजया बोली—कहना ही तो संभव लगता है। मगर आपका मतलब क्या है, यह बिना जाने तो जवाब नहीं दे सकती मैं।

नरेन कुछ देर जानें क्या सोचता रहा। बोला, छोड़िये भी। अब यह चर्चा बिल्कुल फिजूल है।

विजया बेताब सी होकर बोली—न कहिए आप। मैं सुनना चाहती हूँ।

नरेन फिर जरा सोच कर बोला, जो चुक चुका कर खत्म हो गया उसे सुन कर भी क्या करना ?

विजया जिद कर बैठी—उँहू । यह नही हो सकता । मैं सुनना चाहती हूँ, आप कहिये ।

उसके आग्रह की प्रबलता देख नरेन हँसा, बोला, वह बेमतलब होगा, इतना ही नही—कहने मे मुझे भी शर्म आती है । शायद हो कि आप यह सोचें कि मैं चालाकी से आपके सेंटिमेंट पर आघात करके—

अधीर होकर विजया बीच ही म बोल उठी, अब और खुशामद नही कर सकती मैं, आपके पैरों पडती हू, कहिए ।

खा-पी चूकने के बाद ।

नही, अभी ही—

अच्छा, कहता हू, कहता हू । लेकिन एक बात पूछूँ, हमारे घर के बारे मे कभी उन्होने आपसे कुछ नही कहा ?

विजया बहुत ही असहिष्णु हो गई, मगर कोई जवाब न दिया ।

नरेन ने मुस्करा कर कहा, अच्छा, नाराज न हो, कहता हू । मैं जब विलायत जा रहा था, तभी अपने पिता जी से मुझे मालूम हुआ कि मुझे आपके पिता जी ही भेज रहे है । तीन दिन हुए दयाल बाबू ने मुझे चिट्ठियो का एक गट्ठर दिया । जिस कमरे म टूटे फूटे असबाब पडे हैं, चिट्ठिया उसी कमरे की एक दराज मे थी । मेरे पिता जी की चीज के नाते दयाल बाबू ने चिट्ठिया मुझे ही दी । पढकर मैंने देखा उनमे से दो एक आपके पिताजी की लिखी हुई है । शायद आपने सुना हो कर्ज क दु ख से अन्तिम दिनो पिता जी जुआ खेलने लगे थे । चिट्ठी मे शायद इसी का इशारा था । उसके बाद नीचे की ओर एक जगह उन्होने दिलासा देते हुए पिता जी को लिखा, घर की फिक्र मत करो नरेन आखिर मेरा भी तो लडका है, घर मैंने उसको उपहार दिया ।

मुँह उठाकर विजया ने कहा, उसके बाद ?

नरेन बोला—उसके बाद दूसरी दूसरी बातें लिखी ह । लेकिन यह चिट्ठी बहुत पहले की लिखी है बहुत मुमकिन है कि आगे चलकर उनका वह इरादा बदल गया हो और इसीलिए आप से कुछ कह जाना जरूरी न समझा

हो।

अपने पिता की अन्तिम इच्छाओं का एक एक अक्षर याद आकर विजया के दीर्घ निश्वास निकला। कुछ क्षण वह स्थिर रही, रहकर बोली, तो यह कहते कि घर पर दावा करेंगे, कह कर वह हँसी।

नरेन खुद भी हँसा। प्रस्ताव को मजे का मजाक समझ कर बोला, दावा जरूर करूँगा और आपही को गवाह रखूँगा। आशा है, सच बात ही बताएँगी।

सिर हिलाकर विजया ने कहा—बेशक। लेकिन गवाह क्यों रखेंगे ?

नरेन बोला—नहीं तो साबित कैसे होगा ? आखिर अदालत में यह तो प्रमाणित करना पड़ेगा कि घर मेरा है।

विजया गंभीर होकर बोली—दूसरी अदालत की जरूरत नहीं, पिता जी का आदेश ही मेरी अदालत है। घर मैं आपको लौटा दूँगी।

उसके मुँह की शक्ल और आवाज ठीक ठट्ठा सी बेशक न लगी, मगर उसके सिवाय और हो क्या सकता है, यह सोचने की गुंजाइश नहीं। खास कर विजया के परिहास की भंगिमा ऐसी गूढ थी कि उसकी शक्ल से बलपूर्वक कुछ कहना बड़ा कठिन था। इसीलिए खुद भी नरेन बनावटी गम्भीरता से बोला तो उनकी चिट्ठी आखों देखे बिना ही शायद घर मुझे दे देंगी ?

विजया बोली, नहीं, चिट्ठी मैं देखना चाहती हूँ। लेकिन, उसमें अगर यही बात हो, तो उनका आदेश मैं हर्गिज न उठाऊँगी।

नरेन बोला—आखीर तक उनका यही इरादा था, इसका ही सबूत कहाँ है ?

विजया ने जवाब दिया, इरादा नहीं था, इसका भी तो सबूत नहीं ?

नरेन बोला, लेकिन मैं अगर न लूँ, दावा न करूँ ?

विजया बोली—यह आपकी मर्जी। वैसी हालत में आपकी फूफी के बेटे हैं। मेरा विश्वास है अनुरोध करने पर वे दावा करने से इनकार न करेंगे।

नरेन हँसकर बोला—यह विश्वास अपना भी है। यहाँ तक मैं हलफ लेकर भी कहने को तैयार हूँ।

विजया इस हँसी मे साथ न दे सकी। चुप रही।

नरेन फिर बोला—गज कि मैं लूँ न लूँ, आप देकर ही रहेगी ?

विजया बोली, गज कि पिता को दान की हुई चीज मैं हडप नही करूँगी, यही मेरी प्रतिना है।

उसके सकल्प की दृढना देख नरन मन ही मन दग रह गया, मुग्ध हो गया। कुछ देर मौन रहकर स्निग्ध स्वर म बोला उस घर को जब अच्छे काम के लिए दान किया है, तो मैं न भी लूँ तो आपको हडप जाने का पाप न लगेगा। इसके सिवाय, वापस लेकर मैं करूँगा क्या ? मेरा अपना कोई है नही कि उसम रहेगा। मुझे कही न कही बाहर काम करना ही पडेगा। उससे तो जो व्यवस्था की गई है, वही सबसे अच्छी है। एक बात और। वह यह कि विलास बाबू को हर्गिज राजी न कर सकेंगी आप।

इस अन्तिम बात से विजया जल भुन उठी। बोली, अपनी चीज के लिए दूसर को राजी कराने की चेष्टा करने का फालतू समय मेरे पास नही। मगर आप तो और एक काम कर सकते हैं। घर की जब आपको जरूरत नही, तो आप उसका जो वाजिब हो, दाम मुझसे ले लीजिए। फिर तो आपको नौकरी भी नही करनी पडेगी और मजे म अपना काम भी कर सकेंगे। आप राजी हो जाय नरेन बाबू। एकांत विनती भरा अनुनय का यह स्वर अकस्मात नरन के हृदय म तीर की तरह जा चुभा और उसे चचल कर दिया, और गरचे विजया के झुके हुए मुखडे पर विनय के छिपे इशारे को पढने का मौका न मिला, तो भी यह समझने मे देर न लगी कि यह मजाक नहीं, सत्य है। पिता के कज के लिए उसे गृहहीन बनाकर यह बेचारी सुखी नही है, बल्कि जी मे पीडा ही महसूस करती है और किसी बहाने अपन दु ख के उस भार को उतारना चाहती है, यह निश्चित जान उसका हृदय भर उठा। लेकिन, इसी नाते यह प्रस्ताव तो नही माना जा सकता। जो प्राप्त नही, उसकी भीख भी कैसे ले ? एक बडी बात और भी। जो सासारिक बातें पहले बिल्कुल समस्या सी थी, उसमे से बहुतेरी अब उसके लिए सहज हो गई थी उसने साफ समझा, आवेग मे विलास के लिए विजया कहे चाहे जो भी उसकी अडचन को ठेलकर वह अपने इस सकल्प का अन्त तक किसी भी तरह काय-रूप मे नही बदल सकेगी।

इससे उसकी लज्जा और पीड़ा ही बढ़ेगी, और कुछ न होगी।

नरेन कुछ क्षण उसके गड़े हुए मुखड़े की तरफ देखता रहा और मजाक के तौर पर बोला—आपके मन की बात मैं समझ गया। किसी बहाने गरीब को कुछ दान करना चाहती हैं, यही न ?

ठीक यही बात और भी हो चुकी थी एक बार। उसी के दुहराए जाने से वेदना से म्लान होकर विजया ने नजर उठाई और कहा, इस बात से मुझे कितनी तकलीफ होती है, आपको मालूम है ?

मन ही मन हँसकर नरेन बोला—तो असली बात क्या है, सुनूँ ?

विजया ने कहा, मैंने बराबर सच बात ही कही है, लेकिन आपके मन में पाप है, इसीलिए आप यकीन नहीं कर सके। आप गरीब हों चाहे बड़े आदमी हों, मेरा क्या ? मैं तो केवल अपने पिता के आदेश का पालन करने के लिए आपको लौटा रही हूँ।

नरेन अचानक भयंकर गम्भीर हो गया। उसके भी थोड़ी सी मिथ्या रह गई, बोला, उसे छोड़िये, प्रतिज्ञा तो बड़ी-बड़ी किये जा रही हैं, लेकिन पिता जी के हुक्म मुताबिक लौटाना हो तो और कितनी चीज लौटानी होगी, मालूम है ? सिर्फ घर ही नहीं।

विजया बोली—ठीक तो है। अपनी सारी ही संपत्ति लौटा लीजिए।

अबकी नरेन ने गर्दन हिलाई। बोला, चोख कर मुझे दावा करने को तो कह रही हैं। यह भी डर दिखा रही हैं कि मैं न करूँ तो मेरी फूफी के बेटों को दावा करने के लिए कहेंगी। लेकिन उनकी आज्ञा के अनुसार मेरा दावा कहाँ तक पहुँच सकता है जानती हैं ? केवल मकान और कुछ बीघे जमीन ही नहीं, उससे कहीं ज्यादा।

विजया ने उत्सुक होकर पूछा—पिताजी ने आपको और क्या दिया है ?

नरेन बोला—उनकी वह चिट्ठी भी मेरे पास है। उन्होंने सिर्फ उतना सा ही दान देकर मुझे विदा नहीं कर दिया था। यहाँ जो कुछ देख रही हैं आप, उस दान में सब है। मैं सिर्फ मकान पर ही दावा नहीं कर सकता। यह मकान, यह घर, यह सारी मेज-कुर्सी, आईना दीवारगीरी, खाट पलंग, घर की नौकर-नौकरानी, अमले मुलाजिम—यहाँ तक कि उनकी मालकिन तक पर दावा

कर सकता हूँ, मालूम है ? रट तो लगा रही हैं पिता के हुक्म की बार-बार— देंगी यह सब ?

पाव के नाखून से सिर के बाल तक सिहर उठे विजया के। मगर उसने कोई जबाव न दिया। मुँह झुकाए कठोर होकर बैठी रही।

गव के साथ कौर मुँह मे डालते हुए चिकोटी काट कर नरेन बोला—क्यो लग रहा है कि दे मकेंगी सब ? न हो तो बल्कि जरा विलास बाबू से एकान्त म राय मशविरा कर लें।—वह ठठा कर हँसने लगा।

लेकिन इस बार विजया ने माथा जो उठाया तो उसकी वह जोरो की हँसी गोया मार खाकर सन्न हो गई। विजया के चेहरे पर जैसे लहू ही नही—ऐसे सूखे और पाले चेहरे पर नजर पडते ही नरेन परेशान होकर बोल उठा, आप पागल हो गई क्या ? मैं क्या सच ही यह दावा करने जा रहा हू या कि कभी करूँगा ? इससे तो मुझी को पकड कर पागलखाने मे डाल देंगे।

विजया माना कुछ सुन ही नही पाई। बोली, कहाँ है, देखूँ पिता जी की चिट्ठी ?

नरेन अचरज से बोला—खूब फरमाया, मैं क्या जेब मे लिए फिरता हू ? फिर उसे देखकर आपको लाभ क्या है ?

न हो लाभ, आप उन्हे दरबान के मारफत भेज दें जरा। दरबान आपके साथ कलकत्ते जायगा ?

इतनी हडबड ?

हाँ।

१२

रात उनींदी गई इसकी पूरी थकावट लिए सुबह विजया नीचे बैठके मे आई, तो देखा, सिरिश्ते की बहियाँ मेज पर करीने से रक्खी हैं और बूढा गुमाश्ता करीब ही खडा इन्तजार कर रहा है। वह झुककर बोला—माँ जी,

यह सब आज ही हो जाना चाहिये।

उसे दो घण्टे के बाद आने का कह कर विजया ने ऊपर बही उठाली और खिडकी से सटा हुआ जो काच पडा था, उस पर जा बैठी। ध्यान देने की उसमे शक्ति ही न थी—उसकी उद्भ्रात दृष्टि लेखा से पर खिडकी से बाहर इधर-उधर भाग रही थी—एकाएक नजर आया, बगीचे के एक ओर एक पेड के नीचे खडे बूढ़े रासबिहारी परेश से क्या सब ता पूछ रहे है। अंगुली से कभी ता नीचे का कमरा कभी छत की तरफ इशारा कर रहे है। दोनो की बात ता एक भी नही सुनाई पडी, तो भी विजया पल भर म बूढ़े के रहस्यमय इशारे का मर्म समझ गई।

थोडी ही देर म परेश का छोडकर वे कचहरी म दाखिल हो गये। परेश लौटा आ रहा था। खिडकी की राह इशारा करके विजया ने उसे बुलाकर पूछा—तुमसे क्या पूछ रहे थे ?

परेश बोला—अच्छा तुम्ही कहो मा जी, सरकार बाबू से पैसे लेकर मैं लटै-गुडडी लाने नही चला गया था ? डाक्टर बाबू जब खा रहे थे, तब मैं घर था भला ?

विजया बोली, नही।

परेश बोला, फिर जो वडे बाबू कह रहे है कि कबख्त ठीक ठीक बता, नही तो प्यादा से बधवाकर तुझे मोगली चटाऊँगा। मैंने कह दिया, नए दरबान ने तुमसे झूठ मूठ का लगाया है। मुझसे मा जी ने कहा, परेश भागकर जा, डाक्टर साहब को बुलाला, तो मैं तुझे बढिया सा लट्टू दूँगी—जब ता मैं गया। मगर यह वडे बाबू को बता मत देना मा जी तुमने कहने को मना किया है।

विजया ने परेश को दिलासा देकर विदा किया कि उनसे न कहेगी और फिर जहा बैठी था बैठकर खाता उलटने लगी। लेकिन अबकी उसकी नजरो के आगे मारे आकडे लिपे पुते हो गए। न केवल इसलिए कि रात जगी थी, बल्कि असह्य क्रोध से उसकी दोनो आखें आग की लौ सी जलने लगीं। जरा ही देर म बाहर लाठी ठकठकाकर धीरे धीरे रासबिहारी अदर आये और विजया का ध्यान खीचने के लिए हलका सा खासकर एक कुर्सी पर बैठ गये।

विजया ने खाता से नजर उठाकर कहा, आइए आज इतना सबेर ? रामबिहारी ने तुरत उस सवाल का जवाब न देकर बडी बेसब्री से पूछा—तुम्हारी आखें बेतरह लाल हैं बिटिया, सर्दी तो नही लगी ?

सिर हिलाकर विजया ने बताया, नही।

रासबिहारी जैसे सुना ही नही, उत्कण्ठा दिखाते हुए बोले—न कहने से ही तो नही सुनने का ? या तो रात अच्छी नीद नही आई या कुछ—

नही, कुछ भी नही हुआ है।

मगर आखें यो लाल होने का कोई कारण तो—

विजया ने फिर कोई जवाब न देकर काम मे लग गई। यह देखकर रासबिहारी थम गये। थोडी देर थमकर बोले—धूप के डर से ही सवेरे-सबेरे आना पडा बिटिया। दस्तावेजो को जरा देखना है। सुना, घाषपाडा की सीमा के लिए चौधरी लोग मुकदमा करने वाले है।

जमीदारी के निहायत जरूरी कागज-पत्तर वनमाली अपने ही पास रक्खा करते थे। एक तो हरदम इनकी जरूरत ही नही पडती फिर खो न जाय कही, यह कहकर कभी भी उन्होने उन चीजो को अलग नही होने दिया। कलकत्ते से यहा आते समय विजया ये कागज अपने साथ लाई थी और सोने के कमरे की लोहे वाली आलमारी म ब द करके रखा था। विजया न पूछा—व मुकदमा करेंगे किसने कहा ?

रासबिहारी समझदार वाली मुख्तसर हँसी हँसकर बाल—कहा किसी ने नही बिटिया, मुझे हवा म खबर मिल जाता हैं, यह न होता ता इतनी बडी जमीदारा अब तक चला पता ?

विजया ने पूछा—कितनी जमीन का दावा व कर रहे हैं ?

मन ही मन लेखा लगाकर रासबिहारी बोले, होगी बहुत कम भी हुई तो दो बीघा जमीन तो हागी।

विजया न लापरवाही मे कहा—बस ? तो इतनी जमीन वही ले लें। इसके लिए मामले मुकदमे की जरूरत नही।

रासबिहारी ने बडे आश्चय मान करके दु ख के साथ कहा, तुम्हारी जैसी लडकी के मुँह से ऐसी बात की उम्मीद मैंने नहीं की थी बिटिया। आज

अगर बिना किसी हुज्जत के दो बीघे छोड़ दें तो कल दो सौ बीघे न छोड़ने पड़ेंगे, यह किसने कहा ?

मगर ताज्जुब, इतनी बड़ी झिड़की के बाद भी विजया न डोली । उसने सहज ढंग से कहा, लेकिन सच ही तो हमें दो सौ बीघे छोड़ने नहीं पड़ रहे है। मैं कहती हूं, मामूली सी बात के लिए मामले मुकद्दमे की जरूरत नहीं।

रासबिहारी मर्माहत हुए। बार बार सर हिलाकर बोले—यह हर्गिज नहीं हो सकती बिटिया, हर्गिज नहीं । तुम्हारे पिता जी जब सब कुछ मुझ पर सौंप गये है, तो जब तक मैं जिन्दा हूं, बगर प्रतिवाद के दो बीघा तो क्या, दो अंगुल भी जगह छोड़ देने से भारी पाप होगा । उसके सिवा भी और कारण है, जिसके लिए उन कागजों को एक बार अच्छी तरह से देखना जरूरी है। जरा तकलीफ करो, ऊपर से बक्स मँगवा दो ।

विजया ने उठने की कोशिश नहीं की, बल्कि पूछा, और भी कारण है ?

रासबिहारी बोले—हाँ ।

विजया बोली—क्या ?

मन ही मन बेतरह खीझ उठने पर भी अपने को जब्त करके रासबिहारी ने कहा, कारण आखिर एक तो है नहीं, जबानी क्या कैफियत दूँ तुम्हें ?

इतने में खाता-बही लेने के लिए सरकार बाबू के आते ही लज्जित होकर विजया ने कहा, इस बेला तो नहीं कर सकी, उस बेला आकर लें जाइएगा ।

जो, जैसा हुक्म हो—कहकर सरकार लौटा जा रहा था। विजया ने पुकार कर कहा—एक काम है लेकिन । आपको मालूम है, कचहरी का वह नया दरबान कब से बहाल हुआ है ?

सरकार बोला—कोई तीन महीने हुए होंगे ।

विजया बोली, जो भी हो, उसकी अब जरूरत नहीं। इस महीने के बीस दिन अभी भी बाकी हैं, इतने दिनों की ज्यादा तनखा देकर उसे आज ही जवाब दे दीजिएगा ।

सरकार हैरान होकर चले गये । उसका कसूर क्या है, यह पूछने की

जी चाहा, मगर हिम्मत नही पडी।

विजया समझ गई और बोली, किसी कसूर के लिए नही, लेकिन वह मुझे जँचता नही, इसलिए जवाब दे रही हू। तनखा लेकिन पूरे महीने की दीजिएगा।

रासबिहारी का चेहरा क्षण मे तमतमा उठा, पर क्षण मे ही अपने को सम्हाल कर हँसते हुए बोले, तो बिना कसूर के किसी की रोटी मारना क्या अच्छा है बिटिया ?

विजया ने इसका जवाब नही दिया, इससे भरोसा पाकर सरकार ने कहना चाहा—तो फिर उसे—

हा, हटा दें, आज ही। विजया ने खाते मे जी लगाया। सरकार ने फिर भी कुछ उम्मीद की और जरा देर खडा रहा। आखिर चला गया। रासबिहारी पाँचेक मिनट चुप बैठे रहे और फिर अपनी उसी प्रार्थना को दुहराया, जरा तकलीफ गवारा करके उठे बिना नही चलने का बेटी। पुराने दस्तावेजों को एकबार शुरू से आखीर तक पढ़ना ही पडेगा।

सिर उठाये बिना ही विजया बोली—क्यो ?

रासबिहारी गभीर होकर बोले कहा तो, विशेष जरूरत है। बार-बार वही बात कहने का तो मुझे समय नही विजया।

विजया वही देखती रही और बोली, यह तो ठीक कहा आपने, मगर कारण एक भी न बताया।

बताए बिना तुम न उठोगी ? रासबिहारी ने कुछ क्षण आसरा देखा और धीरज खोकर बोल बठे इसका मतलब यह कि तुम मेरा विश्वास नही करती ?

विजया नजर झुकाए काम करती रही, कोई जवाब नही दिया। इस चुप्पी का मतलब इतना साफ था, इतना ओछा था कि मारे क्रोध के रासबिहारी का चेहरा स्याह पड गया। उन्होंने फर्श पर अपनी छडी को ठोक्कर कहा, तुम किसलिए मेरा अविश्वास करती हो, कहो तो ?

विजया ने शान्त कण्ठ से कहा, मेरा भी तो आप विश्वास नही करते। मेरे पैसो से मेरे ही पीछे जासूस लगाने से मन का भाव क्या हो सकता है,

यह आप जरूर समझ सकते हैं, इस पर मेरी सपत्ति के मूल दस्तावेज वगैरह हासिल करने का मतलब मैं और कुछ लगाऊँ, तो वह अस्वाभाविक है ? या वह आपका अपमान करना है।

रासबिहारी को मानो काठ मार गया। उनकी इतनी पक्की चाल कलकत्ते की विलासिता और आदर-जतन मे पली एक भोली लडकी के सामने पकड जायगी, उनके पक्के दिमाग मे इसकी सभावना आइ ही नही और इसी की शिकायत वह उनके मुँह पर करेगी, यह तो मानो उनके स्वप्न से भी परे था।

बडी देर तक विमूढ से बैठे रहने के बाद रासबिहारी ने फिर एकबार जूझने के लिए कमर कसी। और, ऐसे स्वभाव के लोगो का जो सबसे बडा अस्त्र ह, तूणीर से उसी को निकालकर उस बेबस बालिका पर छोडा। बोले, वनमाली की पत रखने के लिए मैंने ऐसे किया। एक मित्र के नाते ही तुम्हारी गति विधि पर मुझे नजर रखनी पडी है। एक अभागे को बँहार से पकडवा मगाकर उसके साथ कल तमाम दिन जो बिताया, क्या मैं इसका मतलब नही समझ सकता ? और इतना नहीं ? उस दिन आधी रात तक उससे हँसी मजाक करके भी तुम्हारा पेट नही भरा, न लौट सकने के बहाने उसे यही रहना पडा। इससे तुम्हे तो शर्म नही आती, लेकिन हम लोगो को तो घर-बाहर मुँह दिखाना मुहाल हो गया। समाज मे किसी के सामने सिर उठाने की गुजाइश न रही।

बात इतनी मर्मान्तक न होती तो शायद हो कि विजया अपमान और क्रोध से उसी समय जोरो से उसका प्रतिवाद करती, लेकिन इस चोट ने उसे मानो विवश बना दिया।

कनखियो से विजया के रक्तहीन चेहरे पर अपने ब्रह्मास्त्र की महिमा देखकर रासबिहारी बडी तृप्ति से कुछ देर चुप रहे। उसके बाद बोले, ये क्या अच्छी हरकतें है बिटिया, इन्हें रोकने की कोशिश करना क्या मेरा फर्ज नही ?

विजया को स्तब्ध देखकर फिर से जोर देकर बाले, उँहूँ, चुप रह जाने से काम न चलेगा विजया, जवाब तुम्हें देना होगा।

फिर भी विजया चुप ही रही तो हाथ की छडी को दुबारे जमीन पर ठोक कर बोले, न, चुप रहने से न होगा। ये मामले सगीन हैं- जवाब देना ही पडेगा।

अब इतनी देर के बाद विजया ने सिर उठाकर ताका। उसके फीके होठ एक बार काप उठे फिर धीरे धीरे बोली, मामला जितना ही सगीन क्यो न हो, झूठी बात का क्या मैं जवाब दे सकती हू आपको ?

रासविहारी न जोश के साथ पूछा—तुम इसे झूठा कहकर उडाना चाहती हो ?

विजया ने फिर थोडा चुप रहकर वैसे ही धीमे धीमे बोली, उडाना मैं बिल्कुल नही चाहती चाचा जी। मैं आपको सिर्फ यही कहना चाहती हू कि यह झूठा है और यह झूठा है, यह बात आप खुद सबसे ज्यादा जानते है यह भी आपको बता देना चाहती हू।

रासबिहारी सिट पिटा से गये। पहली बात के लिए तो वे तैयार थे, लेकिन आखिरी बात के लिए बिल्कुल नही। किसी भी हालत मे उनके मुँह पर विजया उन्हे झूठा और झूठी बदनामी फलाने का जुर्म लगा सकती है, यह बात उनकी कल्पना से भी परे थी। उनके मुँह से अपनी कोई बात न निकल सकी—कल के खिलौने की तरह उन्होने विजया की बात को दुहराया—यह झूठा है, यह बात मैं सबसे ज्यादा जानता हू ?

विजया उठ खडी हुई। बोली—आप गुरुजन हैं, इस बात पर आपसे वाद विवाद करने को जी नही चाहता। दस्तावेज रहने दें अभी, मामला मुकदमा जरूरी समझूँगी, तो आपको बुलवा भेजूगी। कहकर वह बगल के दरवाजे स अ दर चली गई।

२४

सबसे पहले तो विजया के जी मे आया था कि जैसे भी हो कल सबेरे

ही कलकत्ता भाग कर इस व्याधा के फन्दे से जान बचानी होगी। लेकिन उत्तेजना का पहला वार जैसे ही कट गया, उसे लगा, इससे जाल की फसर गल म और क्स जायगी, इतना ही नही साथ ही साथ निन्दा का धुआँ उठकर वहाँ के आसमान तक को गन्दा करने से बाज न आयगा। एसे म वह कलकत्ते के समाज मे ही कैसे मुँह दिखाएगी लेकिन यहाँ भी वह घर से न निकल सकी गर ये वह समझ रही कि उसे छोडन के लिए नही बल्कि अपनाने के लिए ही रासबिहारी ने यह निन्दा निकाली और एकबारगी निराश न हो जाने तक इस झूठ का वे प्रचार नही करेंगे, तो भी दो दिन के बाद जब हिसाब की बहियाँ लेकर गुमाश्ते ने भेंट करना चाहा, तो तबियत की नासाजगी का बहाना बनाकर विजया ने बहियाँ ऊपर मगवाली। अपने कर्मचारी के सामने होने मे भी उसे शर्म आने लगी कि कही किसी सूराख से बात उसके कानो पहुच गई हो और उसकी भी नजर मे अवज्ञा और उपहास छिपा हो।

एक बात से वह जितना डर रही थी उतनी ही जी-जान से उसकी कामना कर रही थी—उसके पिता की चिट्ठी लेकर नरेन खुद ही आएगा लेकिन पाँच छः दिनो मे उस समस्या का हल हो गया डाकिए के माफत चिट्ठी आई जरूर मगर डाक से। नरेन खुद नही आया। वह क्या नही आया, यह अनुमान करने म उसे जरा भी देर न लगी। उसन ठीक यही स दह किया था कि किसी बहाने नरेन के कानो यह खबर पहुचा कर रासबिहारी इस घर का दरवाजा उसके लिए बन्द न कर दें। हाथ म चिट्ठी लेकर विजया सोचने लगी। लेकिन इतनी आसानी से अगर उसका इधर का रास्ता बन्द हो जाय, इस तरह अनायास अगर वह भी इस झूठे कलक का बोझा उसके माथे चढ़ा कर डर से खिसक पडे, तो बदनामी का यह भार जितना भी झूठा क्यो न हो, वह ढोती फिरेगी किस सहारे? वैसे यह झूठा भार ही परम सत्य होकर उसे धूल मे मिला देगा।

ऐसी ही अभिभूत हो थिर बठी वह कितना क्या जा सोचन लगी, उसका अन्त नही। बडी देर बाद खडी हुई और अपने स्वर्गीय पिता के हाथो लिखी दोनो चिट्ठियों को माथे से दबा कर झर झर आँसू बहाने लगी। आँखें पोंछ कर बार-बार वह चिट्ठी पढ़ना चाहने लगी, बार-बार आँसू से दृष्टि धुंधली

हो उठी। अन्त मे बडी देर मे जब उसने उन्हे पढ लिया तो पिता की आतरिक इच्छा उससे अविदित न रही। कभी उसी के लिए उन्होने नरेन का आदमी बनाना चाहा था, यह बात स्फटिक की तरह स्वच्छ हो उठा और यह बात और चाहे जिससे छिपी हो, रासबिहारी से छिपी न थी, यह समझना बाकी न रहा।

और भी पाँच छ दिन निकल गए। एक दिन सुबह जगकर विजया ने देखा, घर मे राज-मजूरे लगे है। बास बांस बाँधकर वे घर की पोताई की जुगत कर रहे हैं। कारण सोचते ही उसके सर्वांग को अवश बनाते हुए याद आया, पूर्णिमा को सिर्फ सात दिन रह गये हैं।

दिन भर तेजी से काम होता रहा, तो भी वह किसी को बुलाकर यह न पूछ सकी कि यह किसके हुक्म से हो रहा है या इसके लिये उससे पूछा क्यो नही गया।

बहुत दिनो के बाद आज कन्हैयासिह के साथ विजया नदी के किनारे घूमने निकली थी। एकाएक दयाल आ पहुचे। बोले—मैं आज तुम्हे ढूँढता फिर रहा हू बिटिया।

विजया ने चकित होकर कारण पूछा, तो बोले, अब समय कहाँ रहा? निमन्त्रण पत्र छपाना होगा, तुम्हारी सखी-सहेलियो और मित्रो का सादर बुलाने की चेष्टा करनी होगी—उनके नाम-धाम मालूम हो जायें तो—

विजया ने सख्त होकर पूछा—निमन्त्रण पत्र शायद मेरे ही नाम से छपाया जायगा?

दयाल मन ही मन जानते थे कि यह विवाह सुखकर नही। सकुचित होकर—नही बिटिया, तुम्हारे नाम से क्यो? रासबिहारी जब वर-कन्या दोनो ही के अभिभावक हैं, तो न्योता उन्ही के नाम से किया जायगा, यही तै पाया है।

विजया बोली, तो क्या उन्होने ही किया है?

दयाल गर्दन हिला कर बोले—हाँ, किया तो उन्ही ने है।

विजया बोली—तो यह भी वही तै करें। मेरे सखी-सहेली, मित्र कोई नही।

दयाल इसका जवाब न दे सके। चलते चलते बात हो रही थी। विजया अचानक पूछ बैठी, आपने जो चिट्ठियाँ नरेन बाबू को दी थी, उन्हें क्या पढ़ा था आपने ?

दयाल बोले— नही बेटी, दूसरे की चिट्ठी मैं क्यो पढ़ूँ ? नरेन के पिता का नाम देखकर मैंने सोचा, चिट्ठिया जिनकी है उनके लड़के को ही देना वाजिब है। एक बार जी मे आया था कि तुम्हे पूछ लूँ, क्योंकि बिटिया, कोई गलती हुई ?

बूढ़े को शर्मिंदा होते देख विजया स्निग्ध स्वर मे बोली—उनके पिता की चीज, उन्हें दी, ठीक तो किया। अच्छा, उन्होंने क्या इस सम्बन्ध मे आपसे कुछ नहीं कहा ?

दयाल बोले कुछ नही,। लेकिन अगर कुछ जानना हो तो उनसे पूछ कर मैं कल ही तुम्हे बता सकता हूं।

विजया ने अचरज से पूछा, कल ही कैसे बता सकेंगे ?

दयाल बोले, लगता है बता सकूँगा। आजकल वे रोज ही मेरे यहाँ आया करते हैं न।

विजया शकित होकर बोली, आपकी स्त्री की बीमारी फिर बढ गई है, आपने तो मुझे यह नही बताया ?

दयाल मुस्कराकर बोले, न, अभी वे अच्छी है। नरेन का इलाज और भगवान की दया—। उन्होंने हाथ जोड कर प्रणाम किया।

विजया के अचरज की सीमा न रही। दयाल की ओर देखकर उसने पूछा—फिर उन्हें रोज क्यो आना पड़ता है ?

दयाल प्रसन्नवदन बोले, जरूरत न हो, मगर जन्मभूमि की माया क्या सहज ही जाती है बेटी ! इसके सिवा इधर उसे काम बहुत कम है वहाँ दोस्त अहबाब भी खास नही—इसीलिए साझ यही बिता जाते हैं। और खास करके मेरी स्त्री उन्हें एक बारगी बेटे मान ही मानती है। मानने लायक है भी। बातो बातो मे जब इतनी दूर आ ही गई बिटिया तो एक बार अपने इस घर में चलो न ?

चलिए—कहकर विजया साथ साथ चलने लगी।

दयाल कहने लगे, मैंने तो इतना निर्मल, ऐसा भला आदमी अपनी इतनी बड़ी उम्र मे कभी देखा ही नही। नलिनी की इच्छा है, बी० ए० पास करके डाक्टरी पढ़ेगी। इसके लिए उसे कितना उत्साह देते है, कितनी मदद देते हैं, इसका ठिकाना नही।

विजया चौंक उठी। कलकत्ते से इतनी दूर आकर साँझ बिताने का यही स देह इतनी देर से उसके मन म जहर सा उफन रहा था। दयाल ने मुड कर देखा, स्नेहार्द्र स्वर म बोले तो फिर रहने भी दो, थक गई हो तुम।

विजया बोली, नही, चलिए।

उसकी गति के धीमेपन में ही दयाल ने थकने की बात उठाई थी, लेकिन उसकी शक्ल देखी होती, तो यह बात जबान पर लाने का भी साहस नही कर पाते।

उस समय कदम-कदम पर कठिन धरती जो विजया के पैरा के नीचे से खिसकती जा रही थी, इसका अन्दाज लगाना दयाल के लिए असम्भव था। जभी वह कहते गए, नरेन की मदद से नलिनी ने कई किताबें खत्म कर डाली। लिखने-पढने का दोनो को ही बडा अनुराग है।

देर तक चुपचाप चलने के बाद आखिरी कोशिश करके अपने को सयत बनाकर विजया ने धीरे धीरे पूछा, आप क्या और कोई शुबहा नही करते?

दयाल ने खास कोई अचरज नही दिखाया। सहज भाव से पूछा—कैसा शुबहा बेटो?

इस सवाल का जवाब भी विजया तुर त न दे सकी। उसकी छाती मानो फटी जाने लगी। अ त मे कहा, मेरा ख्याल है, नलिनी के बारे म उनके भाव को साफ स्वीकार करना उचित है।

दयाल ने हामी भरते हुए कहा—ठीक है। लेकिन उसका समय अभी बीत तो नहीं गया। बल्कि मुझे लगता है, जब तक दोनो का परिचय और थोडा गहरा नही हो जाता तब तक कुछ न कहना ही ठीक है।

विजया समझ गई, यह सवाल औरो के मन मे भी उठा है। कुछ देर चुप रहकर बोली लेकिन नलिनी के लिए तो नुकसानदेह हो सकता है। उन्हें मन को स्थिर करने म शायद समय लगे, लेकिन तब तक नलिनी का—

सकोच और पीडा की बात उसके मुँह से न निकली। लेकिन दयाल ने शायद समस्या का इस दिशा को सोच नही देखा था। सदिग्ध स्वर म बोले—बहुत ठीक। लेकिन अपनी स्त्री से मैंने जहाँ तक सुना है, उससे—लेकिन तमस तो कहा है, नरेन का हम लोग खूब विश्वास करते है। उनसे किसी का कोई नुकसान हो सकता है और वे भी भूल से भी किसी के प्रति अन्याय कर सकते हैं, यह तो मैं सोच भी नही सकता।

वे न सोच सकें, लेकिन फिर भी उसी समय अन्याय किस हद तक पहुँच रहा था, यह केवल अन्तर्यामी ही जानते थे।

दोनो जब दयाल के बैठके मे पहुँचे, सध्या की छाया घनी हो आई थी। एक मेज के दो ओर दो कुर्सियों पर बैठे नरेन और नलिनी। सामने खुली किताब। हरूफ धुँधले हो उठने की वजह से पढना छोडकर आलोचना शुरू हो गई थी। नलिनी इधर को मुँह किए बैठी थी। उसी ने विजया को पहले देखा और उमगकर स्वागत किया। लेकिन विजया का मुखडा वेदना से विवर्ण हो गया, साझ के धुँधले प्रकाश म यह उसे नजर न आया। नरेन झट उठ खडा हुआ। नमस्कार करके पूछा—अच्छी तो हैं आप ?

विजया ने प्रति नमस्कार किया, उसके सवाल का भी जवाब न दिया सुना ही न हो जैसे, कुछ इस ढग से उसकी तरफ पीठ करके नलिनी से कहा, यहाँ, आप फिर तो कभी आई नही ?

नरेन सामने आकर मुस्कराते हुए बोला—और मुझे शायद पहचान भी न पाइ ?

शात अवज्ञा के स्वर मे विजया बोली, पहचान पाने से पहचानना ही पडेगा इसके कोई मानी है ? नलिनी से बोला, चलिए जरा आपकी मामी जी से बात कर आऊँ। और एक नजर इधर देखकर लगभग उसे घसीटती ही ले गई। सीढी पर दो एक कदम चढते ही नलिनी ने पुकार कर कहा, मगर चाय पिए बिना चल मत दीजिएगा नरेन बाबू।

नरेन इसका भी कोई जवाब न दे सका—अपमान और अचरज से काठ का मारा-सा खडा रहा और बूढे दयाल बाबू उसकी इस अप्रत्याशित लज्जा का हिस्सा बटाने के लिए फीका पडा चेहरा लिए चुपचाप खडे रहे। फिर

भी जाने कैसे उन्हें यही सन्देह होता रहा कि जाहिर जो कुछ हुआ वही हकीकत नहीं—इस बेवजह की लापरवाही के पीछे जो चीज आँखों की आड़ रह गई, वह और चाहे जो हो, उपेक्षा अवहेलना नहीं।

जरा देर में चाय की बुलाहट हुई। आज नरेन दयाल के आग्रह को टालकर नीचे ही रह गया। लेकिन उसे नीचे अकेले छोड़कर जाने में दयाल को झिझकते देख तुरंत हँस कर बोला, मैं घर का ही ठहरा, मेरे लिए सकोच न करें। आपकी मां य अतिथि के सम्मान में त्रुटि न होनी चाहिए। आप जल्द जाइए।

दुखी और लज्जित हो ऊपर जाते-जाते दयाल बोले, तो तुम जरा देर बैठोगे ?

नौकर बत्ती रख गया था। सामने की खुली किताब का करीब खींच कर नरेन ने कहा, जी हाँ, क्यों नहीं ?

करीब आध घण्टे के बाद जब तीनों जने नीचे उतरे, तो नरेन किताब रखकर उठ खड़ा हुआ। आज वह चला ही गया होता, तो अच्छा था, क्योंकि उसका यों अकेले इंतजार करते रहना सबको लज्जा और कुंठा से गढ़ता-सा रहा।

नलिनी ने सलज्ज भाव से कहा, आपकी चाय लाने को कह आई हूँ, आ ही चली।

किन्तु विजया ने कोई बात न की, यहाँ तक कि उधर ताका तक नहीं और बाहर निकल गई। कन्हैयासिंह दरवाजे के पास बैठा था, अपनी लाठी सम्हाल कर उठ खड़ा हुआ। बाहर आकर विजया ने देखा, आसमान पर बादल का नाम तक नहीं—नवमी का चाँद ठीक सामने ही अटक-सा गया है। उसे लगने लगा, पैरों के नीचे पड़ी घास से लेकर पास और दूर पर जो कुछ भी नजर आ रहा है—आकाश, मैदान, दूर के गाँव की वन-रेखा, नदी, पानी—सब इस मौन चाँदनी में खड़े खड़े झीम रहे हैं। किसी से किसी का कोई सबध नहीं, परिचय नहीं, कौन तो जाने नींद में उन्हें स्वतन्त्र जगत से तोड़ कर जहाँ तहाँ फेंक गया है—अब जब नींद टूटी है, तो वे एक दूसरे के अजानी शकल को अवाक होकर देख रहे हैं। चलते चलते उसकी आँखों से बेरोक आँसू बह

चला और उसे पोछती हुई वह कहने लगी, अब और नहीं बनता, मुझ से और नहीं बनता।

घर आते ही खबर मिली, जाने क्या तो रासबिहारी शाम से ही बैठके में इंतजार कर रहे हैं। सुनते ही उसकी तबियत खट्टी हो गई और बिना कुछ बोले वह बगल की सीढ़ी से ऊपर अपने कमरे में चली गई। लेकिन यह भी उसका अजाना न था कि लाख देर हो, इस परम सहिष्णु आदमी का धीरज टूट नहीं सकता। जब वे मिलने को बैठे हैं तो रात चाहे जितनी हो, बिना मिले जायेंगे नहीं।

कुछ ही क्षण में परेश ने आकर खबर दी, बड़े बाबू आ रहे हैं और कहना था कि दरवाजे पर उनके चप्पल की आवाज सुनाई दी।

विजया बोली, आइए।

अन्दर जाकर रासबिहारी चौकी पर बैठे। बोले—जब से मैं यहां तो कह रहा था कि इतने इतने नौकर-चाकर हैं, किसी को यह ख्याल न आया कि घर से लालटेन लेकर जायें। दयाल को भी सोचना चाहिए था कि चाँदनी के भरोसे न छोड़कर रोशनी साथ कर दें। और इसी से सोचता हूं, भगवान, तुमने अपने विधान में यहाँ कैसा भेद कर रक्खा है! उन्होंने लम्बा निश्वास छोड़ा। मगर विजया कुछ न बोली। रासबिहारी ने खास कर कुछ आगा पीछा करते हुए अपनी जेब से एक कागज निकाल कर कहा, जो करना है, सब कर चुका हूँ मैं। सिर्फ दस्तखत करना है। इसे लेकिन कल ही भेज देना होगा। और उन्होंने वह कागज विजया के हाथों में रख दिया। देखते ही विजया समझ गई, यह ब्राह्म विवाह का कानूनी कागज है। छपा और हाथ का लिखा, शुरू से अन्त तक दो तीन चार पढ़कर आखिर उसने सिर उठाया। समय ज्यादा नहीं हुआ, मगर इतनी ही देर में उसके दिल में अजीब बात हुई। उसकी इतनी देर की इतनी बड़ी वेदना कभी तो एक कठिन उदासीनता और तीखी वितृष्णा में बदल गई। उसे लगा, संसार के सारे पुरुष एक ही सांचे में ढले हैं। रासबिहारी दयाल, विलास, नरेन—किसी से किसी का फर्क नहीं। बुद्धि और अवस्था के हिसाब से बाहरी भेद जो झलके, बस। नहीं तो अपने सुख और सुविधा के लिये नीचता, कृतघ्नता, निर्दयता में नारी के लिए सब समान ही हैं। आज

सबसे ज्यादा दयाल के आचरण ने ही दुखाया। क्योकि पता नही कैसे, उसका यह निश्चित विश्वास हो गया था कि वे उन दोनो के हृदय की एकात कामना की वस्तु को जानते है। और इस दयाल के लिए उसने क्या नही किया? सपूर्ण हृदय से उन पर श्रद्धा की, प्यार किया, एकाग्र अपना समझा। लेकिन अपनी भानजी के कल्याण के लिए सब जान सुन कर भी उन्होने उस स्नेह और श्रद्धा का कोई मर्यादा नही रक्खी। उन्ही की आखो के सामने ही जब रोज रोज एक अनात्मीया नारी के चरम दुख की राह बन रही थी, तो उनके मन मे कितनी दुविधा, कितनी करुणा पैदा हुई थी? फिर रासबिहारी से उनका मूल प्रभेद कहा और कितना है? और नरेन की बात को तो उसने सोच की सीमा से बाहर ही ठेल रक्खा था, अभी भी उसके विचार का मान नही किया। सिर्फ इतना ही वह बार बार खुद से कहने लगी, जब सभी समान ही है, तो विलास के विरुद्ध ही उसका विद्वेष किस बात का? बल्कि वही तो सबसे निर्दोष है। उसी ने तो सबसे कम अपराध किया है! वास्तव मे उसी की तो बात और व्यवहार मे समता देखी गई! उसका जो भी कसूर है, सिर्फ उसी के लिए। वह जरा स्थिर रही, फिर उसने आपको समझाया, विलास का प्रेम सत्य और सजीव है, इसीलिए वह चुपचाप बर्दास्त नही कर सका, विरोधी शक्ति के खिलाफ वह हथियार लेकर सदा तना रहा है। उसे जाओ कह देने ही से सस्ती सज्जनता बचाकर वह रूठ कर कभी चला नही गया। यही अगर कसूर हो तो उसे सजा देने का अधिकार और जिसे चाहे हो, उसे नही है। एक और बात याद आई वह इस वास्तव ससार की उस दृष्टि से देखा जाय तो विलास की योग्यता सबसे ज्यादा है। उस निकम्मे नरेन के मुकाबले तो उसे किसी भी प्रकार से उपेक्षा का पात्र नही कहा जा सकता।

रासबिहारी उसकी गम्भीरता और निर्वाक् मुखडा देखकर बडे उत्कंठित हो उठे। बोले, तो दवात कलम यहा है कि नीचे से लाने को कहूँ बिटिया?

चौक कर विजया ने देखा। अतीत की घिनौनी, बीभत्स स्मृति पर उसकी चिन्ता की डोरी धीरे धीरे एक बारीक जाल बुन रही थी, स्वार्थ से अंधे इस बूढ़े की कठोर उतावली ने छुरी की नाई उसे पल मे चाक चाक करके आदि से अन्त तक उधेड दिया और दूसरे ही क्षण विजया जी-जान से निदय सी

होकर बोल उठी, अच्छा, एक बात पूछनी हूँ चाचा जी, क्या आपकी यह राय है, कि पाप जितना बडा ही क्यो न हो, रुपये के तले दब जाता है ?

रासविहारी इस सवाल का मतलब ठीक न समझ सके। सगवगा कर बोले, क्यो, ऐसा क्यों बिटिया ?

विजया अडिग दृढ कण्ठ से बोली, नही तो मेरे उतने बडे पाप की परवा न करके आप मुझे अपनाना चाहते ?

रासविहारी शम से तिलमिला उठे। हतबुद्धि होकर बोले, वह तो झूठ है। तुम्हारा बडा से बडा दुश्मन भी तुम पर वह दोष नही लगा सकता।

विजया बोली, दुश्मन शायद न लगा सके। मैं पूछती हूँ, विलास बाबू मुझे श्रद्धा की नजर से देख सकेंगे ?

रासविहारी बोले, श्रद्धा की नजर से नही देख सकेगा ? तुमको ? विलास ! अच्छा—और जोर से आवाज दी, विलास।

विलास पास ही कही इन्तजार कर रहा था शायद, अन्दर आ गया। रासबिहारी बोल उठे, जरा सुनो तो सही विलास, बेटा विजया कह रही है, तुम उसे श्रद्धा की नजर से देख सकोगे ? सुनो भला—

लेकिन विलास से झटपट कोई जवाब देते न बना—सवाल को समझ ही न सका हो मानो, इसी भाव से सिफ ताकता रह गया।

विजया बोली, उस रोज चाचा जी ने घर के नौकर चाकरो से खोज पूछ करने के बाद मुझसे आकर कहा था कि मैं बडी रात तक नरेन बाबू से हँसी मजाक करके भी तृप्त न हुई, आखिर गाडी न मिलने के बहाने नरेन उस रात यहीं रहे और सुबह गए। ऐसी हालत मे--

बात रासबिहारी की चीख पुकार मे दब गई। वे बार-बार कहने लगे, हर्गिज नही, हर्गिज नहीं। नामुमकिन है यह। बिल्कुल झूठ—सरासर—आदि-इत्यादि।

विलास का चेहरा स्याह पड गया। वह बोला—मैंने नही सुना। रासबिहारी फिर चीख उठे—भला यह कहाँ से सुनोगे—यह तो सफेद झूठ है। यह तो—इसी से कम्बख्त दरबान को मैंने—देख लेना तुम, मैं इस परेश के बच्चे को कैसी सजा देता हूँ। मैं—

विलास बोला—सारी दुनिया भी इसकी गवाही देती, तो भी मैं यकीन नही करता।

विजया ने मर्म्न होकर पूछा—आखिर क्यो नही करते यकीन ? मेरी जायदाद के लिए ?

इस बात का छोर पकड कर रामबिहारी ने फिर बक-बक करना शुरू कर दिया था, परन्तु बेटे की शक्ल देखकर यकायक रुक गए।

विलास की आँखें जल उठी, लेकिन उसकी आवाज मे उच्छ्वास या उग्रता जरा भी न दीखी। उसने शान्त स्निग्ध स्वर मे कहा, नही, तुम्हारी जायदाद का हम जरा भी लोभ नही।

सारा कमरा सन्नाटे मे पड गया और उस चुप्पी मे ही एक साथ मानो सारी बातो का घिनौनापन दिखाई दे गया। यह मानो बाजार मे खरीद-फरोख्त का दस्तूर हो रहा हो, जिसमे लाज शर्म, श्री-शोभा का नाम नही—केवल दो आदमी एक नगे स्वार्थ के दो छोरो को कसकर पकडे हुए अपनी ओर जी-जान से खीचातानी कर रहे हो।

बडे कष्टो से अपनी कमाई हुई इतनी उम्र की प्रशात गम्भीरता को बहाकर रामबिहारी जैसे एक इतर की नाई हो-हल्ला और वाग्विवाद कर रहे थे, विलास के सयम के सामने वह त्रुटि जैसे उन्हे भी खली, वैसे ही अपनी प्रगल्भता पर विजया भी ममाहत हुई। मुसीबत जितनी भी बडी क्यो न हो, कोई भी भला औरत आपे से बाहर हो अपने चरित्र को समाधान का विषय बनाकर पुरुष से इस तरह मर्यादा की सीमा से परे वाद-विवाद कर सकती है यह उसे जरा देर के लिए एक और मुमकिन सी बात लगी। उसे लगा, दामपत्य जीवन का जो भी माधुर्य है जो भी पवित्र है, सभी मानो उसके लिए प्रकट होकर मिट्टी म मिल गया।

घर के सन्नाटे को भङ्ग करते हुए विलास ने ही पहले बात की। बोला, विजया, पिताजी चाहे जो कहे हम उन्हे समझ पाएँ या न पायें, लेकिन हमें यह हर्गिज न भूल जाना चाहिये कि उन्होने ब्रह्म के चरणो मे अपने आपको चढा दिया है वे कभी अन्याय नहीं कर सकते। मैं कहूँ, तुम्हारे सिवाय तुम्हारी जगह जायदाद का हमे जरा भी लोभ नहीं है।

विजया ने अपना बदरंग और फीकी निगाह जरा देर विलास पर रोप-कर पूछा—सच कह रहे हैं ?

विलास आगे बढ गया। विजया का दायां हाथ अपने हाथ मे लेकर बोला, मुझ मे अगर कोई सच्चाई है, तो मैं तुम लोगो के सामने सच ही कह रहा हू।

कुछ देर दोनो इसी तरह खडे रहे। फिर विजया ने धीरे धीरे अपना हाथ हटा लिया और टबिल के पास जाकर कलम उठाली। लहमे के लिए शायद हो कि झिझकी, शायद न झिझकी—ठीक ठीक कुछ कहा नही जा सकता पर दूसरे ही क्षण बडे बडे हरूफो मे अपना हस्ताक्षर बनाकर रासविहारी को कागज देती हुई बोली, लीजिए।

रासविहारी ने मोडकर कागज को जेब मे रखखा और खडे होकर वन माली के शोक म काफा आसू बहाया और निराकार परब्रह्म की अपार दया का गुण गाया—फिर रात हो रही है, यह कहकर चले गए।

पिता क चले जाने के बाद विलास गम्भीर और लडकी जैसा सख्त खडा होकर बोला, मैं जानता हू, तुम हम लोगो से प्रेम नही रखती। लेकिन आप लागो की तरह मैं भी अगर उस प्रेम को ही सबसे ऊँचा स्थान देता, तो आज खुले शब्दो मे कह जाता वि विजया, तुमने जिसे प्यार किया है उसी को अपनाओ। मुझमे वह क्षमता, वह उदारता, वह त्याग है। पिता जी से आजोवन मैं झूठी शिक्षा नही पाता [आ रहा हू।

जरा देर मौन रह कर फिर कहने लगा लेकिन एक कामुक रूप तृष्णा जिसे प्रेम समझने की गलती इन्सान करता है, वही क्या ब्राह्म कुमार-कुमारियो के विवाह का चरम लक्ष्य है ? हर्गिज नही, ऐसा हर्गिज नही हो सकता। इसका विराट लक्ष्य है सत्य, मुक्ति, ब्रह्म के चरणो म युगल आत्मा का आत्म समपण देख लेना एक दिन मुझसे इस सत्य को तुम जरूर समझोगी। नरेन जब तक नहीं आया था, तब की बातो को सोच देखो विजया।

क्या कहने को,तो विजया ने सिर उठाया लेकिन उसके होठ काप उठे, प्रबल उच्छ्वास से उसका गला रुंध गया—मुँह से कोई बात न निकल सकी।

कपाल तक दोना हाथ लेजाकर सिर्फ नमस्कार करके वह बगल के दरवाजे से अन्दर चली गई।

२५

कठिन सन्देह की आँच से विजया का हृदय कितना दुखी और बदहवास हो उठा था, एकबारगी आत्मसमर्पण कर देने के पहले तक वह उसे ठीक ठाक समझ नही सकी। सबेरे आज नीद जो टूटी, तो लगा उसका मन शान्त हो गया है। क्योकि मन मे चचलता की झलक तक न दिखाई पडी। बाहर आँखें फैलाई तो लगा, सारा आकाश मानो सावनी सबेरे सा धुँधले मेघो के भार से पृथ्वी पर औंधा सा पडा है। ऐसे दिन मे बिछावन छोडना उसे एक-सा लगा। और आज वह यह सोच ही न पाई कि और दिन जगने मे जरा देर हो जाने से भी क्यो मन लज्जित हो पडता था, क्यो ऐसा लगता था कि बहुत वक्त बर्बाद गया। उसे ऐसा काम ही क्या है कि दो-एक घण्टे बिस्तर पर पडी रह जाय, तो न चले ? घर मे नौकर-चाकरो की भरमार है, जमीदारी ढङ्ग से चल रही है, उसका समूचा भावी जीवन अगर ऐसे ही आराम और चैन से कट जाय तो इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है ? खिडकी से बाहर देखा, गाछ की हरियाली तक आज कैसी बदल गई है, उसके पत्ते तक थिर-गम्भीर हो उठे है। झगडा-झझट, वाद विवाद, अशान्ति, उत्पात—सारे ससार म कही रही नही गया है—महज एक रात मे सब मुनि का तपोवन बन गया हो जैसे।

सम्पूर्ण मन पर छाए हुए अवसाद को शान्ति समझ कर विजया-फालिज मारे हुए की नाई और देर तक बिस्तर पर पडी रह सकती थी। लेकिन परेश की माँ ने दरवाजे पर आकर चीखना पुकारना शुरू कर दिया। जो तडके ही जागा करती हो, वह इतनी देर तक सोई पडी रही—उत्कठा से बार-बार चिल्लाकर किवाड खुलवा कर ही उसने दम लिया।

मुँह हाथ धोकर कपडे बदले और नीचे चली कि सुना रासबिहारी

आज खुद आकर मजूरों के काम की निगरानी कर रहे हैं। दो ही दिन तो रह गये थे केवल, इसी बीच समूचे मकान को नया-सा बना देना था मांज-घिसकर।

जरा ही देर पहले विजया ने सोचा था, पिछली रात जिस कठिन मसले का हल हो गया, आखिर निबटारा हो गया और किसी भी वजह से किसी के लिए अब उसका अन्यथा नहीं हो सकता, उसके भले-बुरे और न्याय-अन्याय पर वह मन में भी कभी वितर्क नहीं करेगी। इस विश्वास के साथ अब यह उस पर सन्देह की छाया भी न पड़ने देगी कि वह मंगलमय की इच्छा से मंगल के ही लिए हुआ है। लेकिन अचानक उसे लगा, यह मुमकिन नहीं। रासबिहारी नीचे है, जाते ही उनसे आमना सामना होगा, यह सोचकर उसका सर्वाङ्ग विमुख बन बैठा और वह सीढ़ी से लौट आई। बरामदे पर देर तक चहलकदमी करती रही, फिर भी जब काटे समय नहीं कटने लगा तो उसे बचपन की साथियों की याद आई। जमाने से किसी से भेंट-मुलाकात नहीं हुई, खत किताबत भी नहीं—आज उन्हीं को याद करके कुछ खत लिखने का ख्याल हो आया और वह पढ़ने के कमरे में आई। मन में कितनी पीड़ायें पुंजीभूत थीं उसके! चिट्ठियों में उन्हीं पीड़ाओं को खोलते हुए वह बात की बात में मुग्ध हो गई। जैसे इतना समय निकल गया, कितना आँसू वह निकला, कोई पता नहीं। इतने में परेश की माँ आई—दीदी जी एक तो बज गया। खाओगी नहीं?

उसने घड़ी की तरफ देखा और फिर लिखने में जुटी रही थी कि परेश की माँ ने लज्जित मृदु-स्वर में कहा—अरे, डाक्टर साहब आ रहे हैं। और, वह जल्दी से हट गई। चौंक कर विजया ने मुड़कर देखा, परेश के पीछे-पीछे नरेन आ रहा है।

नरेन पहले भी एक बार ऊपर आ चुका था, फिर भी वह बिना कोई खबर दिए इस तरह ऊपर चला आयेगा विजया यह सोच भी न सकती थी। सूखा चेहरा, बड़े-बड़े रूखे बाल बिखरे, पर अन्दर कदम रखते ही जब वह बोल उठा, उस दिन आपने मुझे पहचानना क्यों नहीं चाहा, यह तो कहिए? और वह एक कुर्सी पर बैठ गया, तो उसकी शक्ल, उसकी आवाज, उसके सर्वाङ्ग में

हृदय को बोझिल करने वाली ऐसी थकावट झलकी कि विजया जवाब क्या दे, असह्य वेदना से बिल्कुल तिलमिला उठी। उत्कंठा और व्यग्रता से खड़ी होकर उसने पूछा, आपको हुआ क्या है नरेन बाबू, तबीयत तो नहीं खराब है?

गर्दन हिलाकर नरेन बोला, नहीं, ठीक हो गई। जरा-सा बुखार हुआ भी था मगर उसी से इतना कमजोर हो पड़ा कि पहले न आ सका—मगर उस दिन मैंने कसूर क्या किया था आज तो बताइए?

परेश खड़ा था। विजया ने कहा, परेश, अपनी माँ से कह जाकर जल्दी से कुछ खाने को लाए। नरेन से पूछा, मेरा ख्याल है, सुबह से कुछ खाया नहीं है?

नहीं, लेकिन मैं उसके लिए परेशान नहीं हूँ।

लेकिन मैं परेशान हूँ, कहकर विजया परेश के पीछे पीछे खुद भी नीचे चली गई।

थोड़ी देर म भोजन की थाली और उस पर गरम दूध का कटोरा रख कर ले आई तथा अतिथि के सामने रख दिया। नरेन खाने लगा और मुस्करा कर बोला—अजीब हैं आप। दूसरे के घर मे पहचानना भी नहीं चाहती और अपने घर मे इतना ज्यादा चाहती हैं कि ताज्जुब? उस दिन जो वाकया गुजर गया, उससे मैंने सोचा, मगर खबर भेजूँ तो आप शायद मिलना भी न चाहेंगी, इसलिए बिना खबर किये ही परेश के साथ आ धमका। अब लगता है, धोका नहीं हुआ।

विजया कोई बात न बोली। नरेन भी जरा चुप रहा, फिर बोला—मामूली सा बुखार, लेकिन इस कदर कमजोर कर दिया है कि मैं खुद दंग हूँ। अगर जल्दी ही फिर आप लोगों से भेंट होने की उम्मीद होती, तो आज मैं नहीं आता। इतनी दूर चलकर आने में सच ही मुझे बड़ी तकलीफ हुई।

विजया वैसी ही चुप बनी रही। शायद बात को ठीक समझ भी न सकी दूध के कटोरे को खाली करके रखते हुए नरेन बोला, आप लोगों को पता शायद न हो कि मैंने यहाँ की नौकरी छोड़ दी है। आज इस तरह यहाँ आने का यह भी एक बड़ा कारण है—कहकर उसने जेब से एक लाल कागज निकाल कर कहा—आप लोगों के विवाह का निमन्त्रण मुझे मिला है। लेकिन उस शुभ

काम को आँखो देखने का सौभाग्य मुझे न होगा। उसी दिन सबेरे हमारा जहाज करांची से खुलेगा।

विजया ने डर कर पूछा—करांची से ? आप जा कहा रहे है ?

नरेन बोला—दक्षिणी अफ्रीका। पश्चिम म भी एक जगह मिली थी लेकिन जब नौकरी ही करनी है, ता बडी ही अच्छी। मेरे लिए जैसा पजाब, वसा ही केपकानोनी। क्या ख्याल है ? शायद अब हमारी कभी मुलाकात ही न हो।

अतिम बातें शायद विजया के कानो भी न पहुची। वह बडी व्यग्रता से सवाल पर सवाल करने लगी—नलिनी रानी हो गई ? हो भी गई हो तो आप इतनी जल्दी जा कसे सकेंगे, मैं समझ भी नही पाती। उन्ह खोलकर सब बताया है ? इतनी दूर के लिए उन्होन राय भी कैसी दी ?

नरेन हँसकर बोला—रुकिए जरा, रुकिए। अभी किसी से सारी बातें कही नहो है, लेकिन—

बात खत्म करने दे, इतना भी धीरज विजया को न रहा। बीच ही मैं वह आग बबूला होकर बोल उठी—यह हर्गिज नही हो सकता है। आप लोग आखिर हमें बक्स-बिछौना समझने है कि इच्छा हो या नही हो, रस्सी से बाधकर गाडी पर डाल देने से ही साथ जाना पडेगा ? यह हर्गिज न होगा। उनकी राय न हो ता आप उ ह इतनी दूर नही ले जा सक्ते ?

नरेन का चेहरा फक हो गया। जरा देर हक्का बक्का हो रहा उसके बाद बोला माजरा क्या है, यह तो कहिए ? यहाँ आने से पहले दयाल बाबू से भी भेंट हुई थी। सुनकर वे भी चौंके और ऐसा ही कुछ एतराज किया—मैं समझ न सका। इतने लोगों के होते नलिनी की राय पर ही मेरा जाना न-जाना क्यो मुनहसर है और वही मुझे क्यो कन्धा दगी—यह बात पहली-सी लग रही है। असल मे बात क्या है, खोलकर तो कहे ?

विजया न नजर गडा कर एक बार उसे देखा और धीरे धीरे कहा, उनसे आपने विवाह का प्रस्ताव नहीं किया है ?

नरेन मानो आसमान से गिर पडा। बोला—नहीं, किसी दिन नहीं अचानक विजया के चेहरे पर खून दौड गया और उसका चेहरा लाल हो उठा।

मगर तुरन्त अपने को सम्हाल कर कहा—न किया हो सही, करना तो चाहिए था। आपकी इच्छा तो आखिर किसी से छिपी नही है।

नरेन देर तक काठ का मारा सा बैठा रहकर बोला—वह अनर्थ किया किसने, मैं यह सोच रहा हू। जरूर यह नलिनी का खुद का किया हुआ नही है, क्योंकि उन्हे शुरू से ही मालूम था कि यह असम्भव है! पर—

विजया ने पूछा—असम्भव क्या है?

नरेन बोला—छोडिए भी। लेकिन एक कारण उसका यह है कि मैं हिन्दू हूँ, *वह ब्राह्म समाज की है। फिर हम दोनो की जात भी एक नही।*

विजया ने उदास होकर पूछा—आप जात मानते हैं?

नरेन बोला—जरूर। हिन्दुओ मे जातिभेद है। एक दूसरे का विवाह नहीं होता—इसे क्या आप भी नही मानती?

विजया बोली—मानती हूँ, मगर इसे अच्छा नही समझती। आप शिक्षित होकर इसे अच्छा कैसे समझते हैं?

नरेन हँसने लगा। बोला, डाक्टर की अक्ल थोडी गदली किस्म की होती है। खास कर मुझ जैसो की, जो माइक्रोसकोप से कीटाणुओ जैसी नाचीज वस्तु को देख कर ही समय काटा करते हैं। लिहाजा, ऐसी हालत मे मुझे माफ ही कर दे न।

विजया समझ गई, नरेन जाति भेद के सवाल को चालाकी से टाल गया, इसलिए खुश होकर बोली अच्छा, और जात की छोडिए। जात जहाँ एक हो, वहाँ भी क्या केवल अलग धमगत के लिए ही आप विवाह को असम्भव मानते है। आप कैसे हिन्दू हुए। आप तो अजात हैं। आपके लिए भी कोई ब्राह्म लडकी विवाह के लायक नही यह सोचते हैं आप इतना अहकार आपको किस बात का है? और यही अगर आपकी सही राय है, तो यह आपने पहले ही क्यों नही बता दिया था?

कहते कहते उसकी दोनो आँखें छलक आई। आँसू छिपाने के लिए उसने मुँह फेर लिया। लेकिन वह नरेन की नजर मे उसे एक बारगी छिपा न सकी। वह कुछ चकित-सा होकर बोला, लेकिन अभी जो कह रही हैं, यह तो *मेरी राय नहीं है।*

विजया विना इधर मुँह फेरे रुँधे गले से बोली—बेशक यही आपकी वास्तविक राय है।

नरेन बोला, नहीं। मेरी कसौटी न होती तो पता चलता कि यह मेरी सही तो क्या, झूठ की राय नहीं। इसके सिवा नलिनी की बात को लेकर आप नाहक क्या तकलीफ उठा रही है। मुझे मालूम है कि उनका मन कहाँ बँधा है और उन्हें भी ठीक पता चल जायगा कि मैं भी दुनिया के दूसरे छोर को क्या भाग रहा हूँ। सो मेरे चले जाने के लिए आप खामखा परेशान न हों।

बिजया बिजली की तेजी से खड़ी हो गई। कहा, क्या आपका यह ख्याल है कि उनकी असहमति न हो तो आपका जो चाहे जहाँ जा सकते हैं?

नरेन की छाती के अन्दर की बातें बिजली की रेखाओं सी सिहर उठी पर साथ ही उसकी निगाह मेज पर के उस लाल निमन्त्रण पत्र पर भी पड़ी। वह एक क्षण स्थिर रहकर बोला, बात सही है, मैं आपकी असहमति पर भी कुछ नहीं कर सकता। मगर आपको तो मेरी तमाम बातें मालूम है। मेरे जीवन की जो आकांक्षा है, वह भी आपसे अविदित नहीं। विदेश में वह आकांक्षा कभी पूरी हो भी सकती है, लेकिन मेरे जैसे एक इतने बड़े निकम्मे और दीन दरिद्र का इस देश में रहने न रहने से कुछ जायगा—जायगा नहीं।

विजया सिर झुकाये कुछ क्षण चुप रह कर धीरे धीरे बोली, आप दीन दरिद्र तो नहीं हैं। आपको सभी कुछ है। चाहने ही वापस आ सकते है।

नरेन बोला, चाहते ही तो पा सकता हूँ, परन्तु आपने देना चाहा था, यह मुझे याद है और सदा याद रहेगा। लेकिन सोचिए लेने का भी एक अधिकार होना चाहिए, वह अधिकार मुझे नहीं।

विजया उसी भाँति सिर झुकाये बोली, है क्या नहीं! सम्पत्ति मेरी नहीं, पिताजी की है। नहीं होता तो मेरे सर्वस्व पर मजाक से भी दावा करने की बात आप जबान पर नहीं ला सकते। मैं होती तो वहीं हथियार नहीं डाल देती। वे जो भी दे गये हैं, सब कुछ पर कब्जा करती, तिल भर भी छोड़ नहीं देती।

नरेन चुप रहा। विजया भी और कुछ न बोली। नजर नीची किए बैठी रही। कोई दो मिनट उसी तरह से चुपचाप कटा। अचानक एक गहरे

दीघनिश्वास से चकित होकर विजया ने देखा, नरेन का चेहरा अजीब-सा हो गया। दोनो की आँखें मिलते ही वह बोल उठा—नलिनी ने ठीक ही समझा था विजया, लेकिन मैंने विश्वास नही किया। मेरे जैसे एक निकम्मे आदमी की भी किसी को कोई जरूरत हो सकती है, इसे मैंने हँस कर उडा दिया था। तो तुमने हुक्म क्यो नही किया ? मेरे लिए ता इसका सपना देखना भी पागलपन था विजया !

आज इतने दिनो के बाद उसके मुँह से अपना नाम सुन कर विजया एँडी से चोटी तक काँप उठा, वह जबदस्ती मुँह पर आँचल रखकर रुलाई रोकने लगी।

पीछे आहट पाकर नरेन ने मुड कर देखा दयाल आ रहा है।

दरवाजे पर खडे होकर उन्होने चुपचाप एक बार दोनो को देखा, उसके बाद विजया के सोफे पर एक ओर बैठ कर उसके सिर पर दायाँ हाथ रखकर बोले—बेटी।

उसने उनके आगमन का अनुभव किया था और जी-जान से इस धाम नाक रुलाई को राकने को कोशिश कर रही थी। लेकिन करुणा भरे इस 'बेटी' सम्बोधन का नतीजा उलटा हुआ। क्या पता, अपने पिता की याद से ही धीरज छुटाया नही, लमह मे वह बूढ़े को जाँघ पर लुढक पडी और उनकी गोद म मुँह गाडकर रोने लगी।

दयाल की आँखो से आँसू बह निकला। इस मार्मिक रुदन का मम दुनिया मे सिफ वही जानते थे उसके सर पर होले-होल हाथ फेरते हुए कहने लगे, यह अयाय सिफ मेर कसूर से हुआ बिटिया, इम दुघटना का जिम्मेवार मैं ही हूँ। किसे पता था कि नरेन मन ही मन क्वल तुम्ही को । नलिनी से अब तक मेरो यही बातें हो रही थी—वह सब कुछ जानती थी। मैं नादान, मैंने तुम्ह गलती से भूल खबर दो और इस दु ख को लिवा लाया। अब शायद कोई प्रतिकार—

दीवाल घडो मे तीन बज गए। तीनो बुत से बैठे रहे। उनकी गोद मे विजया का दुदम दु ख धीर धीरे ठण्डा पडता आ रहा है, समझ कर उसकी पीठ थपथपाते हुए दयाल ने धीर धीरे कहा, इसका अब क्या कोई उपाय नहीं

हो सकता है बेटी ?

विजया ने उसी प्रकार मुँह छिपाए हुए ही टूटे स्वर में कहा, ,नहीं-नहीं, मरने के सिवाय मेरे लिए और दूसरा रास्ता नहीं।

दयाल ने कहना चाहा, छि बेटी, लेकिन—

विजया जोरो से सिर हिलाते हुए बोली—नहीं नहीं इसमे अब किन्तु की गुंजाइश नही। मैंने वचन दिया है, जीते-जी उसे तोड नही सकती दयाल बाबू ! मर् नही सकूँ, तो मैं—कहते कहते फिर उसका गला रुँध गया। दयाल के मुँह से भी बात न निकली। वे धीरे-धीरे उसके बालो को सिफ सहलाते रहे।

परेश की माँ ने परेश के जरिये बाहर से कहला भेजा—मा जी, दिन के तीन बज गए।

सुनकर दयाल बेतरह परेशान हो उठे और नहाने-खाने का बार-बार अनुरोध करते हुए उसके सिर उठाने की कोशिश करने लगे।

परेश बोला—तुम्हारी वजह से कोई खा नही पा रहा है मा जी ! इस पर आँखें पोंछ कर विजया उठ बैठी और किसी की तरफ देखे बिना धीरे धीरे चली गई।

दयाल बोले, नरेन, तुम्हारा भी तो नहाना खाना नही हुआ ? नरेन अनमना-सा जाने क्या सोच रहा था। सिर उठाकर बोला—नहीं।

तो मेरे साथ चलो।

चलिए—कहकर वह उठा और दयाल के साथ चल पड़ा।

२६

उस दिन साँझ को आसन्न विवाह के सिलसिले में कुछ जरूरी बातें करके बाप-बेटे, दोनो के जाने के बाद विजया अपने अध्ययन-कक्ष में जाते ही हैरान रह गई। दयाल ऐसे समय बैठे थे कि उन्हें किसी के आने का भी पता न

चला । वे कब आए कितनी देर बैठे हैं—विजया को कुछ भी मालूम न था । लेकिन उन्हें इस कदर तल्लीन देख ध्यान तोडकर कौतूहल निवृत्ति की उसे इच्छा न हुई । वह जैसे आई थी वैसे ही चुपचाप निकल गई । लेकिन घण्टे भर बाद लौटकर भी जब देखा कि वे उसी तरह बैठे हुए है, तो धीरे धीरे सामने जा खडी हुई ।

चकित से दयाल ने कहा—तुम्हारी ही राह देख रहा था ।

स्निग्ध स्वर मे विजया बोली, बुला क्यो न लिया ?

दयाल बोले तुम लोग बातें कर रहे थे, इसीलिए नही टोका । कल दोपहर को मेरे यहा तुम्हारा निमन्त्रण रहा । नन्न, न हर्गिज न होगा । कही ना कहकर टाल दो इसी डर से खुद इतनी दूर चलकर आया हू । लेकिन दोपहर को पैदल मत आना । मैंने पालकी-कहार ठीक कर रक्खा है, वे आकर तुम्हे ठीक समय पर ले जायेंगे ।

बूढ़े की करुणा भरी बात से विजया की आखें छलछला उठी । बोली—आपने किसी के मार्फत लिख भेजा होता, तो भी मैं ना न कहती । नाहक ही आप पैदल चलकर इतनी दूर आए ?

दयाल उठकर उसके पास गए । एक हाथ पकड कर बोले याद रहे, बूढ़े चाचा को वचन दे रही हो । कही न गई, तो फिर मुझे दौडकर आना पडेगा—छुटकारा नही ।

विजया सिर हिलाकर बोली, अच्छा ।

लेकिन उनके ऐसे प्रबल आग्रह से वह मन मे चकित हुई । एक तो इसके पहले उन्होंने कभी निमत्रण नही किया, फिर साझ के बजाय दोपहर के भोजन का न्योता । और वचन के पालन के लिए बार बार ऐसा अनुरोध—यह कैसा तो सहज और स्वाभाविक नही लगा । यह तै है कि आज दोपहर तक भी न्योते का सकल्प उसके मन मे नही था—परन्तु इतने ही मे जान आन के लिए सवारी तक का इन्तजाम वे कर जाये हैं ।

असमजस के भाव को छिपा कर विजया ने हँसकर पूछा आखिर क्यो, सुन सकती हूँ ?

दयाल जरा भी हिचके बिना बोले, नही-नही, दोपहर से पहले मैं तुम्हें

यह न बता सकूँगा ।

विजया बोली, खैर, वह न बताएँ, और कौन कौन आमन्त्रित हैं, यह तो कहिये ?

दयाल बोले, तुम सबको पहचान कहाँ पाओगी । वे मेरे उसी टोले के मित्र है । तुम जिन्हें पहचान सकोगी, वे है रासबिहारी और नरेन ।

दयाल चले गये तो विजया बडी देर तक स्थिर बैठी मन मे इसके हेतु को ढूँढती रही । लेकिन जितना ही सोचने लगी, जानें कैसे एक अगम सन्देह से उसके मन का अन्धकार बढता ही चला गया ।

दूसरे दिन जब ढाई बजे तक पालकी नही पहुची और विजया तैयार बैठी रही । तो एक ओर तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही, दूसरी ओर उसने काफी आराम महसूस किया । यह तै था कि परेश की माँ साथ जायगी । उसने इसे लगाकर कोई दस बार विजया को खाने के लिए तग किया और बार-बार पूछा, कहीं बूढ़े दयाल सठिया तो नहीं गये, वे न्योता देकर भूल तो नही गये ? लेकिन किसी को भेज कर खाज-खबर लेने मे भी विजया का सकोच रहा था कि कही किसी अचिंतनीय कारण से अगर वे न्योते की बात भूल गए, तो उन्हें बडी शर्मिन्दगी मे डालना होगा । इस अनहोनी स्थिति विपदा म उसका दुविधा मे पडा मन क्या करे, वह कुछ ठीक नही कर पा रही थी कि ऐसे समय हाँफते हुए आकर परेश ने बताया—पालकी आ रही है ।

विजया जब बाहर निकली तो दोपहरी कब का ढल चुकी थी । तीसरा पहर हो चुका था । मजूरो के पीछे रासबिहारी परेशान थे, पालकी के करीब आकर मुस्कराते हुए बोले—अचानक दयाल को यह खिलाने पिलाने की क्या धुन सवार हो गई नहीं जानता । साझ के बाद मुझे भी जाना होगा, बहुत-बहुत कह गये है । मगर पालकी भेजने म देर होगी, तो मैं न जा सकूँगा । कह देना बिटिया ।

दयाल के दरवाजे पर आम के पत्तो का बन्दरवार लगा था, दोनो तरफ घर रक्खे थे, विजया अचरज मे पड गई । उसने अन्दर कदम रक्खा । दयाल मुहल्ले के कुछ लोगो से बात कर रहे थे । 'बेटी' कहकर लपक और उसका हाथ पकड लिया ।

सीढी पर चढते चढते विजया ने रुष्ट अभिमान के साथ कहा—भूख से मेरी जान निकल गई। यही आपके मध्याह्न भोजन का न्योता है ?

दयाल स्निग्ध स्वर मे बोले—आज तो तुम लोगो को खाना नही चाहिये बेटी। नरेन तो निर्जीव सा लेट हि गया है। आज भर के लिए तो कम से क्रम काने भट चारज जी का शासन मानना ही पडेगा।

दुमजिने के हालघर मे विवाह का सारा आयोजन तैयार था। वे सब है क्या समझ न पाने के बावजूद विजया के प्राण काँप उठे—मुँह खोल कर वह पूछने का भी साहस न कर सकी।

दयाल न सहज ढग से समझाते हुए कहा, शाम के बाद ही लग्न है आज तुम्हारा ब्याह जो है बिटिया। सौभाग्य से दिन-लग्न जुट गया, न जुटता तो भी आज ही करना पडता, टाला नही जा सकना था, खैर, सब ठीक-ठीक मिल गया। जभी तो भट चारज जी ने हँसकर कहा—मानो तुम्ही लोगो के लिये पत्रा मे इस लग्न को सृष्टि हुई थी।

विजया का चेहरा फक पड गया। बोली—आप क्या मेरा हिन्दू विवाह कराएगे ?

दयाल बोले, हिन्दू विवाह क्या विवाह नही है बेटी ? लेकिन साम्प्रदायिक मत ने मनुष्य को ऐसा अन्धा बना रक्खा है कि कल तमाम दिन सोचकर भी इस छोटी सी बात का कूल किनारा न पा सका। लेकिन नलिनी ने पल भर मे मुझे समझा दिया। उसने कहा, मामा जी उनके पिता उन्ह जिनके हाथो सौंप गए हैं, आप उन्ह उन्ही के हाथो सौंपिये नही तो ब्राह्म विवाह के बहाने कुपात्र के साथ म सौंपेंगे तो अधम की सीमा न रहेगी। और सच्चा विवाह तो मन का मिलन है। वरना ब्याह का मन्त्र हिन्दी हो या सस्कृत, उसे भटचारज जी पढायेंगे या आचाय, इससे क्या आता-जाता है ? इतनी पेचीदी समस्या बिल्कुल पानी हो गई। मैंने मन ही मन कहा, भगवान तुमसे तो कुछ छिपा नही। इन दानो का ब्याह चाहे जिस मत से करा दू। मैं जानता हूँ, मैं जानता हूँ कि तुम्हारे चरणा में अपराधी न बनू गा। मगर मैंने फिर भी कहा, लेकिन एक बात है नलिनी। विजया उन्हे बचन जो दे चुकी है। वे तो इसी भरोसे बैठे हैं। इसका क्या होगा ?

नलिनी बोली, मामा जी, आप तो जानते हैं, विजया के अन्तर्यामी ने कभी हामी नही भरी—उससे बडा क्या विजया का धर्म ही होगा ? उसके अन्तर के सत्य की उपेक्षा करके उसके मुँह की बात को ही बडा मानना होगा ?

मैंने अचरज से कहा, तूने यह सब कहाँ सीखा बेटी ?

नलिनी बोली—मैंने नरेन बाबू से सीखा। वे बार-बार कहते हैं, सत्य का स्थान कलेजे में होता है, जबान पर नही। महज जबान से निकल पडने से ही कोई चीज कभी सत्य नही हो सकती। फिर भी उसी को लोग सबसे आगे, सबके ऊपर स्थापित करना चाहते है, वह इसलिए नही कि सत्य को प्यार करते है, बल्कि इसलिए कि वे सत्य भाषण के दंभ को प्यार करते हैं।

जरा चुप होकर बोले, तुम नरेन को नही जानती बेटी, वह तुम्हे कितना अधिक प्यार करता है, वह भी शायद ठीक ठीक नही जानती। वह ऐसा है कि असत्य का बोझा तुम्हारे सिर लादकर वह तुम्हे ग्रहण करना हर्गिज कबूल नही करता। जरा शुरू से अन्त तक उसके कामो को सोच तो देखो।

विजया कुछ न बोली। काठ की मारी-सी खडी रही।

नलिनी अन्दर काम मे व्यस्त थी। पता चला तो दौडी आई और विजया को छाती से जकड लिया। उसके कान में कहा—तुम्हे सजाने का भार नरेन बाबू ने मुझे दिया है। चलो। और उसे एक प्रकार से खीचकर ले गई।

दो घण्टे बाद जब फूल चन्दन से उसे वधू वेश में सजाकर आसन पर बिठाया और सामने की खिडकी खोल दी, तो साथ ही दक्षिणी हवा और चाँदनी उसके परलोकवासी माता-पिता के आशीर्वाद की तरह लज्जित मुखडे पर आकर के पडी।

जो कन्यादान करने बैठी, पता चला, वे विजया के दूर के रिश्ते मे फूफी होती है। मन्त्र पढाते समय काने भट्टाचार्य जी ने बताया, दो-तीन पुश्त पहले वही लोग जमींदार घर के कुल पुरोहित थे।

विवाह हो चुका। वर वधू को ले जाने की तैयारी हो रही थी कि विवाह सभा मे रासबिहारी आकर उपस्थित हुए। दयाल ने खडे होकर सादर उनकी अभ्यर्थना की और हाथ जोडकर कहा—आओ भाई आओ। विवाह

निर्विघ्न सपन्न हो चुका—अब आज के दिन मन मे कोई ग्लानि न रक्खो तुम इन दोनो को आशीर्वाद दो भाई !

रामविहारी कुछ देर स न से खडे रहे और फिर सहज स्वर मे बोले—आखिर बनमाली की बिटिया का ब्याह हिन्दू मत से ही कराया दयाल ? मुझे बताया होता, तो इसकी तो जरूरत नही पडती।

दयाल सिटपिटा कर बोले—सभी विवाह तो एक ही हैं भाई।

रासबिहारी ने सख्ती से कहा, नही। परन्तु बनमाली की बेटी ने गाव से अपने बाप के आजीवन निर्वासन की बात को भी जरा सोच कर न देखा ?

नलिनी पास ही खडी थी। बोली, उनकी लडकी ने अपने स्वर्गीय पित के सच्चे आदेश का ही पालन किया है। अनुष्ठान की बात पर सोचने का अवकाश न मिला। आप खुद भी तो बनमाली बाबू की आन्तरिक इच्छा को जानते थे। उसमे कोई त्रुटि नही हुई।

रामबिहारी न इस दुमु ख लडकी की ओर एक हिंसक नजर डाल कर सिफ कहा—हु। कहकर व लौट पडन लग कि नलिना ने कहा—वाह, आप ब्याह-मडप से यों ही लौट जाएँगे ! यह नही हाने का आपको खाकर जाना पडेगा। मैंने किस कष्ट से तो मामा को भेज कर आपको न्योता देकर बुलाया है।

रामविहारी बोले नही। सिफ फिर से एक जलती हुई निगाह उस पर डाल कर धीरे धीरे बाहर चले गए।

— — — —